अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष- 44, अंक- 2, 1-15 सितंबर 2020

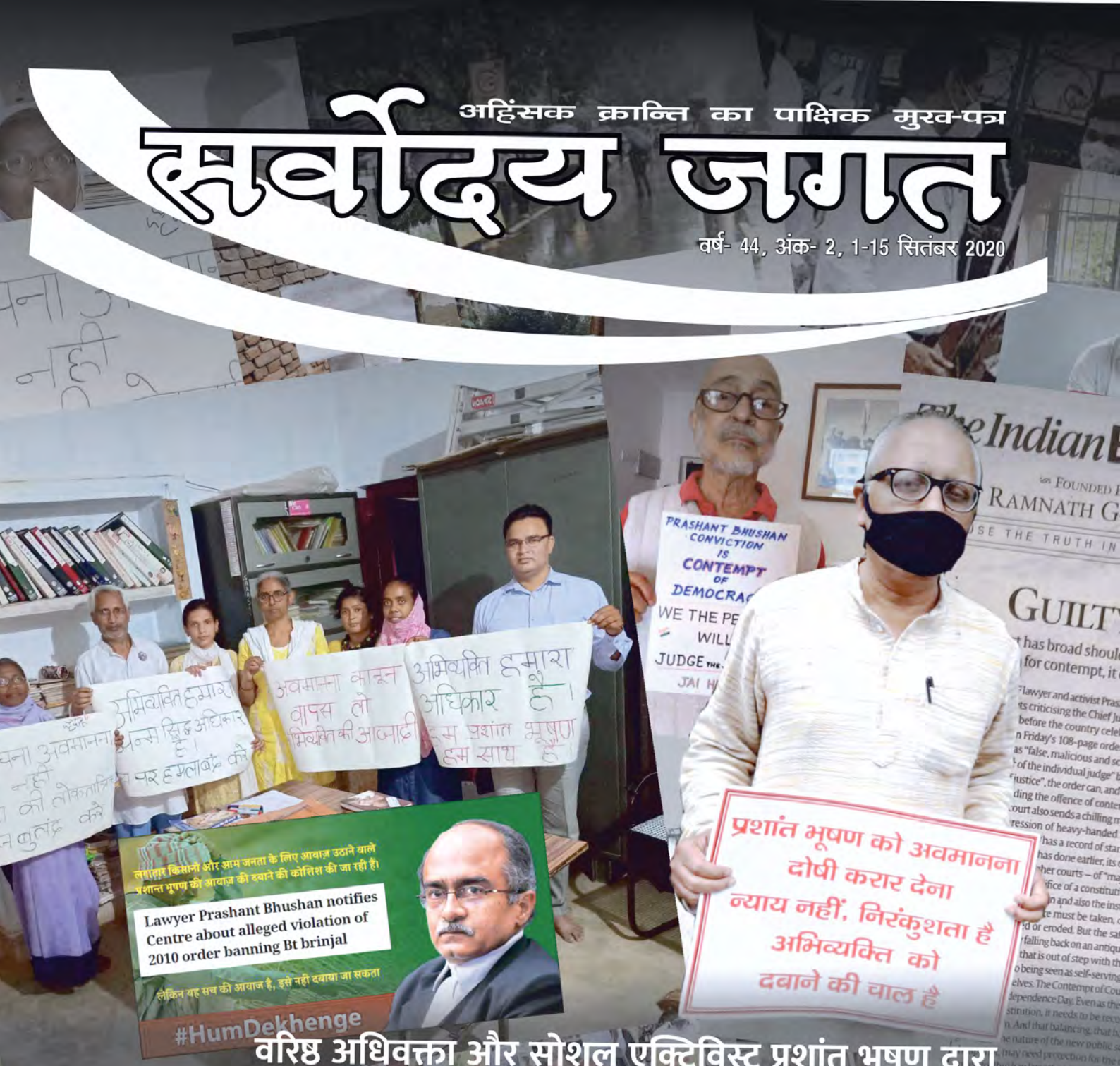

वरिष्ठ अधिवक्ता और सोशल एक्टिविस्ट प्रशांत भूषण द्वारा किये गए ट्वीट्स में सर्वोच्च न्यायालय के अंतिम चार प्रधान न्यायाधीशों की आलोचना को न्यायालय की अवमानना मानते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने उन्हें दोषी ठहराया। गत 20 अगस्त 2020 को, जब सर्वोच्च न्यायालय में उनकी सजा पर सुनवाई हो रही थी, तो देश के विभिन्न हिस्सों में सामाजिक कार्यकर्ताओं, मजदूर संगठनों और गाँधीजनों ने इस रवैये का मुखर विरोध किया और प्रशांत भूषण के साथ अपनी एकजुटता प्रदर्शित की।

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 44, अंक : 02, 01-15 सितंबर 2020

अध्यक्ष
महादेव विद्रोही

संपादक
बिमल कुमार
सहसंपादक
प्रेम प्रकाश
09453219994
संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह **भवानी शंकर कुसुम**
प्रो. सोमनाथ रोडे **अरविन्द अंजुम**
अशोक मोती

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

एक प्रति	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC Code : UBIN0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. संपादकीय... 2
2. अध्यक्ष की कलम से... 3
3. सुप्रीम कोर्ट सोचे कि संविधान ने... 5
4. सड़कों पर मजदूरों की पिटाई से नहीं... 6
5. ऐसी भी क्या जल्दी थी... 7
6. लाल किले पर सपनों का सौदागर... 8
7. गांधीजी होते तो क्या करते... 9
8. प्रथम सत्याग्रही विनोबा भावे... 10
9. यहां पराया कौन है!... 11
10. भारत में लोकतंत्र का गला घोंटता... 13
11. पर्यावरण प्रभाव आकलन अधिसूचना... 14
12. कोरोना महामारी और सत्ता का इंद्रजाल... 16
13. नेपाल-भारत संबंधों में दरार... 17
14. महात्मा गांधी और हिन्दी... 18
15. हक के लिए अदालत के दरवाजे पर... 19
16. कविता... 20

संपादकीय

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

भारतीय गणराज्य के निर्माण के लिए जिन मूल्यों पर सर्वसहमति थी, उन मूल्यों पर निरतंर प्रहार हो रहा है। सेक्यूलरिज्म (सर्वधर्म समभाव), लोकतांत्रिक प्रक्रिया, अभिव्यक्ति की आजादी आदि कुछ ऐसे ही मूल्य हैं। आप सेक्यूलर होने की बात कीजिये, तुरंत ये कहा जायेगा कि आप मुस्लिम तुष्टीकरण वाले हैं या पाकिस्तान के हाथों खेल रहे हैं। आप कश्मीर में लोकतांत्रिक प्रक्रिया की बहाली की बात करें, आपको ब्रांड कर दिया जायेगा कि आप आतंकवादियों के समर्थक हैं, देशद्रोही हैं। इसी तरह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का मूल्य भी निशाने पर है। पूछा जायेगा कि क्या आतंकवादियों, देशद्रोहियों एवं नक्सलवादियों को आप खुली छूट देना चाहते हैं।

सच्चे एवं त्यागी देशभक्त भी जब सेक्यूलरिज्म, लोकतांत्रिक प्रक्रिया, नागरिक अधिकार व नागरिक आजादी तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की बात करते हैं तो उन्हें देशद्रोही करार दिया जाता है। यह समझना जरूरी है कि ऐसा क्यों हो रहा है। जिन मूल्यों पर सर्वसहमति थी - आजादी की लड़ाई के दौरान भी और आजादी के बाद नये भारत के निर्माण के आधारभूत मूल्यों के रूप में भी - उस सर्वसहमति को खत्म किया जा रहा है। यानि जिस नये भारत के निर्माण का अभियान चलाया जा रहा है, उसमें ये मूल्य रोड़ा बने हुए हैं।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का महत्त्व यह है कि सत्ता और व्यवस्था जब मानवद्रोही होने लगे तो नये समाज/नये मनुष्य के निर्माण की जरूरत को रेखांकित किया जाये तथा उसके लिए खाका प्रस्तुत किया जाये। लेकिन सत्ताएं हर काल में ऐसे प्रयासों का दमन करती हैं। सुकरात, ईसा, मंसूर, गांधी और बहुत से ऐसे लोग हुए, जिन्हें मौत के घाट उतार दिया गया। इनमें से कुछ को और हर काल के क्रांतिकारियों जैसे भगत सिंह, अशफाकुल्ला, बिस्मिल, राजगुरु, सुखदेव, डॉ. रोशन सिंह, उधमसिंह आदि को भी कानून के माध्यम से फांसी के फंदे पर लटकाया गया। यानी कानून के बाहर एवं कानून के माध्यम से, दोनों तरीके अपनाये गये। जब सत्ता प्रतिष्ठान को खतरा होता है, जज तब भी फांसी का फैसला सुनाते रहे हैं, क्योंकि वे भी सत्ता प्रतिष्ठान के अंग हैं तथा उसी कानून की रक्षा करते हैं, जिसका निर्माण सत्ता प्रतिष्ठान ने किया होता है।

इसीलिए जो शक्तियां लोकतांत्रिक व्यवस्था को खत्म करना चाहती हैं, वे पहले उसके स्तम्भों को खोखला बनाती जाती हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की दो महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। एक सत्ता प्रतिष्ठान के गलत को उजागर करना तथा दूसरे आमजन की आकांक्षा को क्रांतिकारी अभिव्यक्ति देना। आज इस सम्भावना को खत्म करने का अभियान जोर-शोर से चल रहा है। अगर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उपयोग ही करना है तो विपक्ष, प्रगतिशील एवं क्रांतिकारी शक्तियों की गैर जिम्मेदाराना भूमिका पर प्रश्न उठाइये, उन्हें गलत साबित करने का अभियान चलाइये। सच्चाई तो यह है कि गंभीर विमर्श तो छोड़ दीजिये, व्यंग्य लेखन एवं कार्टून बनाने वाले भी सत्ता प्रतिष्ठान के निशाने पर हैं।

न्याय एक जटिल प्रक्रिया है, जिसे कानून के सीमित दायरे में नहीं समझा जा सकता है। इसे मानवीय चेतना के उच्चतम स्तर के संदर्भ में ही समझा जा सकता है। जैसा कि हमने पहले जिक्र क्रिया, क्रांतिकारियों को फांसी की सजा देने वाले तथा आंदोलनकारियों को सजा सुनाने वाले भी जज थे। क्या तब उन जजों ने न्याय किया था या अंग्रेजी शासन व उसके कानून के प्रति भक्ति व निष्ठा रखने के कारण ऐसा किया था? सत्ता प्रतिष्ठान के प्रति भक्ति और निष्ठा रखने वालों से यह अपेक्षा रखना निरर्थक होगा कि वे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने में मदद करेंगे।

आज फिर से समाज को सुकरात, ईसा, मंसूर, गांधी, भगत सिंह, राजगुरु, बिस्मिल, सुखदेव आदि जैसे सत्यनिष्ठ क्रांतिकारियों की जरूरत है, जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को अपना नैसर्गिक अधिकार समझते हुए फिसलन को रोकने का काम करें तथा मानवीय समाज को पुनः उच्चतम चेतना से भर दें। राष्ट्र एक कठिन घड़ी से गुजर रहा है। सर्वसहमति से बनी राष्ट्र की अवधारणा को नष्ट नहीं होने दिया जा सकता।

–बिमल कुमार

अध्यक्ष की कलम से

❑ महादेव विद्रोही

रिजर्व बैंक ने कहा, कोरोना के कारण मंहगाई बढ़ेगी

भारतीय रिजर्व बैंक ने एक रिपोर्ट जारी किया है, जिसके अनुसार आने वाले दिनों में खुदरा मुद्रास्फीति बढ़ेगी। जुलाई 2020 में खुदरा मुद्रास्फीति बढ़कर 6.93% हो गयी है। आर्थिक विशेषज्ञ पहले से ही चेतावनी देते आ रहे हैं कि कोरोना के कारण अर्थव्यवस्था की कमर टूट गयी है और आगे यह स्थिति और गंभीर होगी, पर सरकार इसे मानने के लिए तैयार नहीं थी। अब जब रिजर्व बैंक की रिपोर्ट आ गयी है, तब देखते हैं कि सरकार क्या कहती है।

रिजर्व बैंक की ही एक और रिपोर्ट में कहा गया है कि बैंकों के साथ एक वर्ष में 1.85 लाख करोड़ की धोखाधड़ी हुई है। वर्ष 2018-19 में 71543 करोड़ का मामला सामने आया है, जो पिछले वर्ष में 1 करोड़ 85 लाख 644 करोड़ रुपये था। इस प्रकार हम देखते हैं कि धोखाधड़ी की घटनाओं में 28% की वृद्धि हुई है। 2018-19 में धोखाधड़ी के 6799 मामले सामने आये थे, जो इस वर्ष बढ़कर 8707 हो गये हैं। वैल्यू की दृष्टि से ऐसे मामलों की संख्या में 159% की वृद्धि हुई है। इस रिपोर्ट के अनुसार वित्तीय संस्थाओं एवं बैंकों के साथ धोखाधड़ी के कुल मामलों में से 50.7% मामले सरकारी बैंकों के दर्ज किये गये हैं। धोखाधड़ी के कुल मामलों में से 88% यानी 1,48,400 करोड़ रुपये की धोखाधड़ी सरकारी बैंकों में हुई है, जबकि निजी बैंकों में 34211 करोड़ की धोखाधड़ी हुई है तथा 3066 मामले दर्ज हुए हैं।

गुलाबी भ्रष्टाचार-सरकार ने जब नोटबंदी की थी, तब यह कहा था कि बड़े नोटों के कारण भ्रष्टाचार बढ़ता है। इसलिए 1000 रुपये के नोट बंद कर दिये गये, पर 2000 रुपये का नोट चालू होने से सरकार का खुद का फार्मूला फेल हो गया। अभी जो समाचार आये हैं, उससे लगता है कि सरकार दो हजार रुपये के नोट को बंद करना चाहती है। एटीएम से तो दो हजार के नोट कब से गायब हो गये हैं। रिजर्व बैंक की वार्षिक रिपोर्ट में कहा गया है कि वर्ष 2019-20 में दो हजार के नोट छापे ही नहीं गये। मार्च 2020 के अंत में 33632 लाख नोट प्रचलन में थे, जो मार्च 2019 में घटकर 32910 लाख हो गये। मार्च 2020 के अंत में देश में प्रचलित नोटों में दो हजार के नोटों का हिस्सा 2.4% है, जो मार्च 2019 की तुलना में 3% की कमी दर्शाता है। मार्च 2018 के अंत में देश में प्रचलित कुल नोटों में दो हजार के नोटों का हिस्सा 3.3% था। मूल्य के संदर्भ में देखें तो 2000 के नोटों का हिस्सा मार्च 2018 में 37.3% से घटकर मार्च 2019 में 31.2% और मार्च 2020 में और घटकर 22.6% हो गया है।

कोरोना और बेरोजगारी

कोरोना और सरकार द्वारा उठाये गये कदमों के कारण देश में अप्रैल से लेकर अगस्त के दूसरे सप्ताह तक 1 करोड़ 89 लाख लोगों को अपनी नौकरी गंवानी पड़ी है। सेंटर फॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकोनॉमी (CMIE) ने अपनी ताजा रिपोर्ट में आगाह किया है कि देश की अर्थव्यवस्था पर संकट गहराता जा रहा है। जुलाई महीने में ही रोजगार गंवाने वाले की संख्या 50 लाख का आंकड़ा पार कर चुकी थी। कई सेक्टर अभी भी बुरी तरह प्रभावित हैं। इनमें टूरिज्म, ट्रैवल और हॉस्पिटैलिटी सेक्टर शामिल हैं। यहां 3 से 4 करोड़ तक नौकरियां जाने का अंदेशा है। होटल इण्डस्ट्री का तो और बुरा हाल है। मौजूदा वित्तीय वर्ष में अर्थव्यवस्था की अनुमानित दर 3.2 से भी नीचे जा सकती है। क्या सरकार इसे अपनी उपलब्धि मानती है? यह तो संगठित क्षेत्र की बात हुई। असंगठित क्षेत्र में तो कितने लोगों के रोजगार धंधे छिन गये हैं और उनके सामने दो जून की रोटी का भी संकट उपस्थित हो गया है। इसकी छिटपुट रिपोर्टें तो आती रहती हैं, पर पूरा चित्र स्पष्ट करने वाली कोई रिपोर्ट अभी तक आयी नहीं है। एक अनुमान के मुताबिक इसकी संख्या भी करोड़ों में होगी। सरकार किसी को रोजगार तो नहीं दे पा रही है। उल्टे सरकार के कदमों से लोगों ने अपने अभिक्रम से जो रोजगार सृजित किये थे, उन्हें इनसे भी हाथ धोना पड़ा है। इस समस्या के समधान के लिए अगर केन्द्र और राज्य सरकारों ने कोई ठोस पहल नहीं की, तो करोड़ों लोगों के सामने भुखमरी का संकट पैदा हो जायेगा।

कोरोना का प्रसार नित नये रिकार्ड तोड़ रहा है

इन पंक्तियों को लिखते लिखते भारत में 61694 लोगों की मृत्यु हुई है तथा संक्रमितों की संख्या 33 लाख को पार कर गयी है। जानकार लोग कहते थे कि गर्मी में कोरोना का असर कम होगा, पर प्रचंड गर्मी में भी कोरोना बढ़ा ही है, घटा नहीं है। इसका मतलब यह है कि विशेषज्ञों के भी अनुमान सटीक साबित नहीं हो रहे हैं। कहा जा रहा है कि अगले कुछ महीनों में कोरोना की वैक्सीन आ जायेगी। विश्व स्वास्थ्य संगठन से जुड़े विशेषज्ञों का कहना है कि इस प्रक्रिया को पूरी करने में कई वर्ष का समय लग सकता है। यदि टीका बनाने में सभी प्रक्रियाओं को पूरा नहीं किया गया तो इसके विपरीत परिणाम भी हो सकते हैं। इसलिए अच्छा तो यही होगा कि टीके के निर्माण में विश्व स्वास्थ्य संगठन की गाइड लाइंस के मुताबिक सभी प्रक्रियाओं एवं मापदंडों को पूरा किया जाय।

टीका बन जाने के बाद भी कोरोना तुरंत समाप्त हो जायेगा, यह मानना बड़ी भूल होगी। चेचक का टीका आ जाने के बावजूद भी उसके उन्मूलन में दशकों लग गये। इसलिए हमें यह मानकर नहीं चलना चाहिए कि टीका के आते ही समस्या का समाधान हो जायेगा। टीके के अभाव में जिन दवाइयों से कोरोना का इलाज हो रहा है, उनकी कालाबाजारी के समाचार ने मानवता को शर्मसार कर दिया है। जब लाखों लोग जीवन और मौत से जूझ रहे हैं, तब आवश्यक दवाओं की कालाबाजारी करने वालों को मनुष्य तो नहीं ही कहा सकता है। सरकार को इस पर तुरंत सख्त कार्यवाही करनी चाहिए। हमको स्वास्थ्य के मोर्चे पर कोरोना से तो लड़ना ही है, साथ ही इसके सामाजिक एवं आर्थिक प्रभावों से भी निपटना होगा। नहीं तो परिणाम और भी गंभीर होने का खतरा है।

देश प्रशांत भूषण के साथ

सर्वोच्च न्यायाल ने प्रशांत भूषण के किसी ट्वीट पर उनको न्यायालय की अवमानना का दोषी करार दिया है। इसमें छः महीने की कैद और आर्थिक दंड भी हो सकता है। प्रशांत भूषण को क्या सजा दी जाये, इस पर 20 और 25 अगस्त को सुनवाई थी। सर्वोच्च न्यायालय ने दोनों बार बिना मांगे उन्हें पुनर्विचार के लिए समय दे दिया। सामान्यतया वादी समय मांगते हैं। सर्वोच्च न्यायालय के इतिहास में संभवतः पहली ही बार न्यायालय ने बिना मांगे वादी को समय दे दिया। प्रशांत भूषण ने कहा भी कि वे माफी नहीं मांगने वाले हैं और इसके लिए जो भी सजा होगी, उसके लिए वे तैयार हैं। उन्होंने कहा कि पुनर्विचार के बाद भी मेरे बयान में कोई खास परिवर्तन होगा, ऐसा मुझे लगता नहीं। 20 अगस्त को देश के सभी न्याय तथा स्वतंत्रता प्रिय लोग 'हम प्रशांत भूषण के साथ हैं' लिखे नारों के साथ देश भर में हजारों की संख्या में खड़े हो गये। यह न्यायालय के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना है। क्या न्यायालय की राय से भिन्न राय रखना कोई अपराध है? प्रशांत भूषण को उनके मांगने के बावजूद आरोपपत्र तथा दूसरे संबद्ध दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराये गये। इस प्रकार न्यायालय ने खुद न्याय प्रणाली का गला घोंट दिया है। देश में विभिन्न अदालतों में लाखों की संख्या में विभिन्न मामले वर्षों से और कई तो दशकों से लंबित पड़े हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने जिस फुर्ती के साथ प्रशांत भूषण के मामले की सुनवाई की, काश ऐसा दूसरे वादों को निपटाने के लिए भी किया होता। यद्यपि उन्हें सजा देने के मामले में सुप्रीम कोर्ट अभी भी असमंजस में ही है।

बिहार विधान सभा का चुनाव

निर्वाचन आयोग ने चुनाव के संबंध में जो दिशा-निर्देश जारी किया है, उसको देखते हुए लगता है कि बिहार विधान सभा का चुनाव होने जा रहा है।

बिहार अभी कोरोना प्रभावित राज्यों के क्रम में ऊपर तो है ही, साथ ही लगभग आधा बिहार विभिन्न नदियों में आयी बाढ़ के कारण डूबा हुआ है। लोगों के घरबार सहित सारा कुछ डूब गया है। अनेक जगह पीने का पानी भी नहीं मिल रहा है, खाने की तो बात ही छोड़ दें। बिहार के लोग प्राकृतिक आपदा के सामने पूरी तरह लाचार व बेबस हैं, ऐसे में हमारी प्राथमिकता कोरोना और बाढ़ से मुकाबला करना होना चाहिए या चुनाव कराना? स्थिति की गंभीरता को देखते हुए हमें लगता है कि चुनाव यदि कुछ महीने विलंब से होगा तो कोई पहाड़ नहीं टूट पड़ेगा।

केरल में ग्राम पंचायतों के चुनाव

आने वाले दिनों में केरल में ग्राम पंचायतों के चुनाव होने वाले हैं। केरल सर्वोदय मंडल ने मांग की है कि ग्राम पंचायतों के चुनाव दलीय आधार पर नहीं होने चाहिए और न ही किसी पार्टी के कार्यकर्ता को चुनाव में खड़ा होना चाहिए। यह एक अच्छा विचार है। ग्राम पंचायतें हमारे लोकतंत्र की प्राथमिक इकाई है। क्या हम कम से कम इसे राजनीति से मुक्त नहीं रख सकते? केरल सर्वोदय मंडल ने 13 अगस्त 2020 को अपनी मांग के समर्थन में दिन भर का उपवास प्रदेशव्यापी किया। लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने दलविहीन लोकतंत्र की कल्पना की थी। पूरी प्रक्रिया को दलविहीन बनाने में हो सकता है समय लगे, पर इसकी शुरुआत ग्राम पंचायत से तो कर ही सकते हैं। यदि पार्टी के उम्मीदवार खड़े नहीं होंगे तो आशा है कि जनता ऐसे लोगों को चुनेगी, जो वास्तव में लोगों के बीच रहकर काम करते हैं और जनता से सीधे जुड़े हुए हैं। वर्तमान माहौल ऐसे सुयोग्य उम्मीदवारों की ही आवश्यकता है।

जामिया नंबर एक विश्वविद्यालय

मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा जारी 40 केन्द्रीय विश्वविद्यालयों की रैंकिंग में जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय पहले नंबर पर रहा है। इसने 90% स्कोर प्राप्त किया। राजीव गांधी विश्वविद्यालय, अरुणाचल प्रदेश 83% स्कोर प्राप्त कर दूसरे स्थान पर, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय 82% स्कोर प्राप्त कर तीसरे स्थान पर तथा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय 78% स्कोर प्राप्त कर चौथे स्थान पर रहा। साम्प्रदायिक सियसत के इस दौर में इन विश्वविद्यालयों को बदनाम करने में तथाकथित राष्ट्रवादियों ने एड़ी चोटी का जोर लगा रखा था। सरकारी पार्टी के लाख प्रयत्नों के बावजूद इन चारों विश्वविद्यालयों ने जो स्थान प्राप्त किया है, वह सिद्ध करता है कि इन छात्र-छात्राओं ने पढ़ाई के साथ लोकतंत्र की रक्षा की लड़ाई में भी पूरी तरह भाग लिया। हम इन चारों विश्वविद्यालयों को बधाई देते हैं।

अल्पसंख्यकों को गुनहगार साबित करने पर तुली सरकार

तबलीगी जमात के मामले में मुम्बई हाईकोर्ट ने सरकार को दिखाया आईना

अप्रैल 2020 में देश के अधिकांश समाचार माध्यमों तथा केन्द्र सरकार ने तबलीगी जमात के लोगों को अपराधियों के कठघरे में खड़ा कर दिया और ऐसा माहौल तैयार किया, जिससे लगता था कि देश में कोरोना महामारी फैलाने में सबसे बड़ा योगदान तबलीगी जमात का ही है। सरकार ने तबलीगी जमात से जुड़े लोगों पर अनेक प्रकार के एफआईआर दर्ज किये। 22 अगस्त को मुम्बई हाईकोर्ट की औरंगाबाद बेंच ने इन सभी एफआईआर को रद्द करते हुए जो टिप्पणी की है, वह अपने आप में स्पष्ट है। कोर्ट ने कहा कि इस मामले में तबलीगी जमात के विदेशियों को बलि का बकरा बनाया गया। कोर्ट ने मीडिया पर भी तल्ख टिप्पणी करते हुए कहा कि तबलीगी जमात को कोरोना वायरस संक्रमण का जिम्मेदार बता कर प्रोपेगैण्डा चलाया गया। महामारी ऐक्ट, महाराष्ट्र पुलिस ऐक्ट, डिजास्टर मैनेजमेंट ऐक्ट और फॉरेनर्स ऐक्ट से संबंधित धाराओं में दर्ज सभी मामलों को कोर्ट ने रद्द कर दिया और यह महत्त्वपूर्ण टिप्पणी की-'भारत में संक्रमण के ताजा आंकड़े दिखाते हैं कि याचिकाकर्ताओं के खिलाफ ऐसे ऐक्शन नहीं लिये जाने चाहिए थे। विदेशियों के खिलाफ जो ऐक्शन लिया गया, उसकी क्षतिपूर्ति के लिए सकारात्मक कदम उठाये जाने की जरूरत है। दिल्ली के मरकज़ में आये विदेशी लोगों के खिलाफ प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में प्रोपेगैण्डा चलाया गया। भारत में फैले कोविड-19 संक्रमण का जिम्मेदार इन विदेशी लोगों को ही बनाने की कोशिश की गयी। तबलीगी जमात को बलि का बकरा बनाया गया।' ❑

सुप्रीम कोर्ट सोचे कि संविधान ने उसे क्या दायित्व सौंपा है और वह किस ओर जा रहा है

❑ रामचंद्र गुहा

मशहूर इतिहासकार रामचंद्र गुहा ने न्यायपालिका की मौजूदा स्थिति पर सुप्रीम कोर्ट के जजों के नाम एक खुली चिट्ठी लिखी है, जिसे 'इंडियन एक्सप्रेस' ने प्रकाशित किया है। पेश है उसके हिन्दी अनुवाद के संपादित अंश। **-सं.**

मैं यह पत्र सम्मान और पीड़ा के साथ लिख रहा हूँ। मैं यह एक इतिहासकार और सामान्य नागरिक की हैसियत से लिख रहा हूँ, इन दोनों ही रूपों में मैं सर्वोच्च न्यायलय के कामकाज के प्रति लोगों के घटते विश्वास से चिंतित हूँ।

मैं यह सीधे-सीधे कह दूँ कि यह भारतीय लोकतंत्र के पतन का ही हिस्सा है, जिसमें निश्चित रूप से अदालत की केंद्रीय भूमिका रही है। इस पतन के दूसरे और शायद अधिक गंभीर रूप हैं- नौकरशाही व पुलिस, व्यक्ति को केंद्र में रख कर पूरे एक पंथ का निर्माण, मीडिया को डराना-धमकाना, टैक्स व जाँच एजेंसियों का इस्तेमाल कर स्वतंत्र आवाज़ को दबाना, औपनिवेशिक युग के दमनकारी क़ानूनों को हटाने के बजाय उन्हें और सख्त करना और राज्यों के अधिकारों को लगातार कम करते हुए संघीय ढाँचे को कमज़ोर करना।

अदालत की नाकामी के कुछ उदाहरण हैं, यूएपीए जैसे क़ानून, जिनका संवैधानिक लोकतंत्र में कोई स्थान नहीं होना चाहिए, उन्हें खारिज करने से अदालत का इनकार करना, बड़े मामलों की सुनवाई में देरी करना, (मसलन, चुनाव फंडिंग और समान नागरिकता क़ानून), कश्मीर के बच्चों और छात्रों को बुनियादी मानवाधिकारों से वंचित रखना, लोकतंत्र में सबसे लंबे समय तक इंटरनेट बंद कर पूरे एक साल के लिए शिक्षा और ज्ञान के सभी साधनों को रोकना। संविधान विशेषज्ञ और वकील इन उदारणों में और बहुत कुछ जोड़ सकते हैं।

अधिनायकवाद और सत्ता के केंद्रीकरण के इस ट्रेंड को कोविड-19 के संकट ने और आगे बढ़ाया है। केंद्र सरकार और सत्तारूढ़ दल ने भी व्यक्तित्व-आधारित पंथ की प्रवृत्ति को आगे ही बढ़ाया है, ताकि राज्य सरकारों के अधिकारों को और कम किया जा सके और स्वतंत्र मीडिया पर हमले किए जा सकें। यह अफ़सोस की बात है, जैसा कि बीते कुछ महीनों की सुनवाइयों और आदेशों से साफ़ है कि सर्वोच्च अदालत इन अशुभ रुझानों को रोकने में अनिच्छुक या असफल है।

एक न्यायाधीश ने दमनकारी क़ानून के तहत जेल में बंद माँ से मिलने के लिए तड़प रही एक बेटी से कहा कि वह ठंड से बचे, एक दूसरे न्यायाधीश ने यकायक हुए लॉकडाउन की वजह से बेरोज़गार हुए प्रवासी मज़दूरों से कहा कि उन्हें वेतन की माँग नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उन्हें थोड़ा बहुत खाना तो मिल ही रहा है। न्यायाधीशों को इस तरह की निष्ठुर और संवेदनहीन बातें करने से बचना चाहिए। मौजूदा सरकार के 6 साल के कार्यकाल में एक मुख्य न्यायाधीश रिटायर होने के तुरन्त बाद राज्यपाल बनना स्वीकार कर लेते हैं और एक दूसरे न्यायाधीश राज्यसभा का सदस्य बनने पर राजी हो जाते हैं, अदालत के लिए यह और बुरी बात है।

इसके बावजूद अकेले शीर्ष पर बैठे आदमी को दोष नहीं दिया जा सकता है। मुमकिन है कि 'मास्टर ऑफ़ द रोस्टर' की क्षमताओं को सही ढंग से परिभाषित नहीं किया गया हो। मुझे लगता है कि अब समय आ गया है कि देश की सबसे बड़ी अदालत के सभी कार्यरत जजों को संविधान द्वारा दिए गए दायित्वों और अदालत जिस दिशा में जा रही है, उसके बीच के अंतर पर विचार करना चाहिए। सुप्रीम कोर्ट की प्रतिष्ठा आपातकाल के बाद से अब तक शायद सबसे निचले स्तर पर है। हमारे शीर्ष के संविधान विशेषज्ञों के लेखों को पढ़ने से ऐसा ही लगता है।

पिछले मुख्य न्यायाधीश के बारे में गौतम भाटिया ने लिखा है कि उनके कार्यकाल में सुप्रीम कोर्ट एक ऐसे संस्थान से, जिसका मुख्य काम लोगों के बनियादी हकों की सुरक्षा करना था, गिर कर ऐसा संस्थान बन गया है, जो कार्यकारी की भाषा बोलता है, जिसे कार्यकारी से अलग करना मुश्किल हो गया है।

इस दौरान प्रताप भानु मेहता ने कहा कि हम सुप्रीम कोर्ट की ओर संविधान की रक्षा के लिए देखते हैं। अदालत का फ़ैसला क्या होगा, यह हमे नहीं मालूम, पर हाल के इतिहास से हमने यह सीखा है कि लोकतंत्र में सुप्रीम कोर्ट कैसे काम करता है, इस मामले में हम ग़लतफ़हमी के शिकार हुए हैं। हाल के दिनों में सुप्रीम कोर्ट ने हमें बुरी तरह निराश किया है, राजनीतिक आज़ादी न होने से काम टालने, नहीं करने की इच्छा और उत्साह की कमी से ऐसा हुआ है।

न्यायपालिका के सबसे अनुभवी और बुद्धिमान लोग भी इन बातों से सहमत हैं, जो सार्वजनिक रूप से अपनी व्यग्रता जाहिर नहीं कर सकते। मैं इन विद्वानों के आकलन का समर्थन करता हूं। इसके साथ ही एक इतिहासकार के रूप में मैं यह भी जानता हूं कि समय के साथ संस्थान सड़ते हैं, लेकिन नीयत ठीक हो तो उन्हें फिर से ठीक भी किया जा सकता है।

1970 के दशक में राजनीतिक लोगों और सत्ता में बैठे लोगों के सामने आपातकाल के दौरान समर्पण के बाद 1980 और 1990 के दशक में अपनी स्वायत्तता और स्वतंत्रता पर सुप्रीम कोर्ट ने ज़ोर दिया। इसी तरह यह उम्मीद की जा सकती है कि मौजूदा समय का पतन भी रुक सकता है और इसे एक बार फिर दुरुस्त किया जा सकता है, एक तरफ अधिनायकवादी और सांप्रदायिक कट्टरता की ताक़तें तेजी से आगे बढ़ रही हैं और सुप्रीम कोर्ट इसे रोकने की दिशा में कुछ नहीं कर रहा है या जो कुछ कर रहा है, वह नाकाफी है, दूसरी ओर इतिहास और संविधान के विद्वानों का फ़ैसला मौजूदा समय से अधिक कड़ा हो गया है।

इस मामले में आज की अदालत को भविष्य में आने वाली पीढियों के लोग कार्यकारी अदालत के रूप में ही नहीं देखेंगे, बल्कि उसे इस रूप में देखेंगे, जो कार्यकारी सत्ता के साथ मिलीभगत कर काम करता रहा हो। यह पत्र एक इतिहासकार और एक नागरिक की ओर से है, जो लोकतंत्र और संवैधानिक ढाँचे को अपनी आँखों के सामने टूट कर बिखरता हुआ देख रहा है। - **सत्यहिन्दी**

सड़कों पर मजदूरों की पिटाई से नहीं होती अवमानना?

❑ विजय शंकर सिंह

जिस जल्दीबाजी में कई न्यायिक औप-चारिकताओं को नजरअंदाज करके प्रशांत भूषण मामले की जल्दी जल्दी सुनवाई पूरी की गई है, उससे कानून के जानकार कई सवाल उठा रहे हैं। यह मुकदमा प्रशांत भूषण अवमानना प्रकरण का पटाक्षेप नहीं करेगा, बल्कि इतने सवाल खड़े कर देगा, जिससे हो सकता है, अवमानना मानने की ऐसी परंपरा के मद्देनज़र अवमाननाओं के और भी कई मामले अदालत को सुनने पड़ जाएं। अदालत, वकील, कानून, दलील और नज़ीर पर बराबर बहसें और चर्चाएं होती रही हैं, यह लीगल प्रोफेशन का स्वाभाविक चरित्र है। इससे न केवल कानून के कई गिरह खुलते हैं, बल्कि बेहतर कानून बनाने की प्रेरणा भी मिलती है।

अब जबकि सुप्रीम कोर्ट ने यह मान लिया है कि अदालत की अवमानना हो चुकी है और उसके लिये प्रशांत भूषण दोषी साबित हो चुके हैं, तो इस विषय पर बात करने का कोई लाभ नहीं है। लेकिन ट्वीट में मानवाधिकार और जनता के हित के लिए, समय पर उचित संज्ञान न लेने का भी उल्लेख प्रशांत भूषण ने अपने ट्वीट में किया है, इस विषय पर बात होनी चाहिए और सुप्रीम कोर्ट को उस पर आत्मावलोकन भी करना चाहिए।

50 लाख की मोटरसाइकिल पर बैठे जस्टिस बोबडे की जैसी तस्वीर वायरल हो रही है और जिसके कारण सुप्रीम कोर्ट की गरिमा भरभरा कर गिरने की बात की जा रही है, अगर किसी राजनीतिक दल के नेता की महंगी मोटरसाइकिल पर बैठे किसी पुलिस के एसआई की ऐसी ही तस्वीर वायरल हो गयी होती तो वह अब तक सस्पेंड हो गया होता और उसकी विभागीय जांच शुरू हो गयी होती।

उस पर आरोप लगता कि उसका यह कृत्य एक अधिकारी के लायक नहीं है, यानी अनबिकमिंग ऑफ एन ऑफिसर है। अखबार चटखारें ले कर खबरें छापते। वह बेचारा यही सफाई देते-देते थक जाता कि वह तो उत्कंठा वश बैठ गया था और वह तो यह भी नहीं जानता था कि वह किसी नेता की है। सार्वजनिक जीवन से जुड़ी नौकरियों में यह एक आम खतरा है कि जनता बहुत बारीकी से सरकारी सेवक की हर हरकत देखती है। जनता किसी को नहीं छोड़ती है, और अब तो हर हाथ में इंटरनेट और हर मोबाइल में कैमरा आ ही गया है।

आने वाले समय में कानून के छात्र न केवल अवमानना के इस मुकदमे के कानूनी पहलुओं पर बहस करेंगे, बल्कि संवैधानिक पद पर आसीन न्यायमूर्तियों के आचरण की सीमा पर चर्चा भी करेंगे। वकालत के पेशे में लीगल हिस्ट्री और रूलिंग्स का बहुत महत्व है, यह आप किसी भी बड़े वकील के चैंबर में रखी हुई एफआईआर की मोटी-मोटी पोथियों को देखकर अंदाजा लगा सकते हैं। प्रशांत भूषण को क्या सज़ा मिलती है और कितनी सज़ा मिलती है, यह अदालत को तय करना है और सज़ा प्रशांत भूषण को भुगतना है। जनता को जस्टिस बोबडे के बाइक पर सवार होने से कोई बहुत सरोकार नहीं है। लेकिन इस सारे हंगामा ए हालात के बीच इस ट्वीट में उठाये गए मूल सवाल अब भी अनुत्तरित हैं।

सवाल ये कि जब हज़ारों लोग सड़कों पर भूखे-प्यासे, नंगे पांव, बेबस भटक रहे थे तो संविधान की रक्षा की शपथ लिये न्यायमूर्तियों को उनकी खबर लेने की सुधि क्यों नहीं आयी? जब सॉलिसीटर जनरल अदालत में यह झूठ बोल रहे थे कि माई लॉर्ड, सड़क पर कोई नहीं है, जबकि पूरा देश सोशल मीडिया पर मजदूरों के पलायन के बंटवारे की त्रासदी जैसे दृश्य देख रहा था। रेलवे प्लेटफार्म पर एक बच्ची को अपनी मरी हुई मां की चादर खींचते हुए देखकर देश सकते में था और सॉलिसीटर जनरल के झूठ को बेशर्मी से बेनकाब होते देख रहा था। तो क्या तब अदालत की अवमानना नहीं हुई थी? क्या यह जानबूझकर सरकारी वकील द्वारा अदालत को गुमराह करना नहीं था? इस झूठ और गलत बयानी को बंद लिफाफे में रखे सुबूतों की तरह चुपचाप स्वीकार कर लेना, क्या जनता को न्याय से वंचित करना नहीं था? क्या सुप्रीम कोर्ट द्वारा इस मामले पर सभी संबंधित राज्यों से स्टेटस रिपोर्ट तलब नहीं करनी चाहिए थी? क्या यह सम्मानपूर्वक जीने के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं था? क्या सॉलिसीटर जनरल से यह नहीं पूछा जाना चाहिए था कि उन्होंने जानबूझकर अदालत को क्यों गुमराह किया?

सॉलिसीटर जनरल द्वारा अदालत में गलत बयानी का यह अकेला उदाहरण नहीं है। प्रशांत भूषण के ट्वीट में यही तो कहा गया है कि 'भारत के चीफ़ जस्टिस ऐसे वक्त में राज भवन, नागपुर में एक बीजेपी नेता की 50 लाख की मोटरसाइकिल पर बिना मास्क या हेलमेट पहने सवारी करते हैं, जब वे सुप्रीम कोर्ट को लॉकडाउन में रखकर नागरिकों को इंसाफ़ पाने के उनके मौलिक अधिकार से वंचित कर रहे हैं।'

इसमें क्या गलत है, सिवाय एक हेलमेट के? खड़ी बाइक पर हेलमेट धारण करना, आवश्यक नहीं है। खैर, अब मोटरसाइकिल की बात तो हो गयी और प्रशांत भूषण को दोषी भी तय कर दिया गया। जो सजा उन्हें मिलनी है, मिल ही जाएगी। पर ट्वीट का दूसरा भाग जो मौलिक अधिकारों से जुड़ा है, उस पर सुप्रीम कोर्ट का क्या कहना है, यह अब तक अस्पष्ट है। हज़ारों, लाखों की संख्या में बंगलुरु, चेन्नई, मुम्बई, सूरत, अहमदाबाद, पंजाब, दिल्ली आदि से जो मज़दूर अपने घरों की ओर गिरते, पड़ते और घिसटते, बेबस और बेहिस से जा रहे थे, उनके मौलिक अधिकारों और सम्मानपूर्वक जीवन के अधिकार के पक्ष में जब खड़े होने का अवसर आया तो देश की सबसे बड़ी अदालत पीछे हट गई और पीड़ितों को कोई राहत नहीं दे पाई। जब इसी मामले में सोशल मीडिया पर पूरी छीछालेदर हो गयी तब सुप्रीम कोर्ट ने संज्ञान ज़रूर लिया, लेकिन तब अदालत विलम्ब से जागी थी।

झूठ बोलना सरकारों की आदत होती है। निश्चित ही सरकारों के लिए और अदालतों के लिए भी यह आत्मावलोकन का समय है। सभी सरकारें झूठ बोलती रहती हैं, पर किसी झूठ को जस का तस स्वीकार कर लेना तो अदालत की कोई मज़बूरी नहीं थी। उसे तो सरकार से आंकड़े तलब करने चाहिए थे। जो पूरा देश सामने देख रहा है, उसे सरकार भले ही न देख सके पर सत्य के अन्वेषण का दायित्व तो सुप्रीम कोर्ट या न्यायपालिका का ही है। कोई सहमत हो या न हो, लेकिन यह बात तय है कि जनता से जुड़े मुद्दों पर सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्गत हाल के कुछ निर्णय और अप्रोच जनविरोधी रहे हैं। ❑

प्रशांत भूषण मामला

ऐसी भी क्या जल्दी थी? : जस्टिस लोढ़ा

प्रशांत भूषण पर अवमानना के मामले का पहले ही काफी विरोध हो रहा था, लेकिन अब उन्हें दोषी करार दिए जाने के बाद इसकी चतुर्दिक आलोचना हो रही है। भारत के पूर्व चीफ जस्टिस आरएम लोढ़ा ने सवाल किया है कि एक महामारी के बीच एक आभासी अदालत के माध्यम से प्रशांत भूषण के खिलाफ मामले की सुनवाई के लिए सुप्रीम कोर्ट ने इतनी जल्दी क्यों की? उन्होंने कहा कि यह मामला तब उठाया जा सकता था, जब अदालत भौतिक सुनवाई फिर से शुरू कर देती। यह मेरे लिए थोड़ा परेशान करने वाला है।

फैसले पर टिप्पणी करते हुए वरिष्ठ अधिवक्ता संजय हेगड़े ने कहा कि अदालत द्वारा अवमानना की शक्ति के इस्तेमाल में यह भी जांचा जाना चाहिए कि इस मामले के जरिये कैसे उसके अधिकार को कम कर दिया गया है। उन्होंने कहा कि यह निर्णय खुद अदालत के लिए न्यायोचित नहीं है, क्योंकि इसमें अदालत का अधिकार महज दो ट्वीट के जरिये आंका गया है। जनता का भरोसा और अदालत का अधिकार उससे अधिक मजबूत नींव पर टिका है।

विपक्षी दलों ने सवाल उठाया कि सुप्रीम कोर्ट ने वरिष्ठ वकील प्रशांत भूषण को अदालत की अवमानना के लिए दोषी ठहराने में अति सक्रियता दिखायी, जबकि संविधान के अनुच्छेद 370 को रद्द करने और कश्मीर में राजनीतिक नेताओं के लिए दायर बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका के मामले एक साल से अधिक समय से लंबित हैं। सुप्रीमकोर्ट के इस फैसले पर सबसे सटीक टिप्पणी वरिष्ठ पत्रकार करन थापर ने की। उन्होंने लिखा कि 'सुप्रीम कोर्ट न्याय स्थापित करने के लिए बनाया गया था, लेकिन 2014 से ही सुप्रीम कोर्ट संघ के आंगन में नाच रहा है।

दी इंडियन एक्सप्रेस में लिखे अपने एक लेख में इतिहासकार रामचंद्र गुहा ने विस्तार से बताया कि कैसे सुप्रीम कोर्ट सत्ता, न्याय एवं लोकतंत्र के रक्षक की जगह सत्ता के उपकरण के रूप में काम कर रहा है...

ये वही सुप्रीम कोर्ट है, जो सीबीआई जज लोया की हत्या की जांच नही होने देता। ये वही सुप्रीम कोर्ट है, जो राफाल सौदे की जांच नही होने देता। ये वही सुप्रीम कोर्ट है, जो कोरोना काल में सड़कों पर मर रहे मजदूरों के मामले को नही सुनता। ये वही सुप्रीम कोर्ट है, जो ईवीएम मशीन के बारे में सुनवाई नही करता। ये वही सुप्रीम कोर्ट है, जहाँ से भाजपा सांसद विजय माल्या के घोटालों की फ़ाइल खो जाती है। ये वही सुप्रीम कोर्ट है, जो निरंतर आरक्षण विरोधी फैसले दे रहा है, आर्थिक आधार पर सर्वणों के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण उसे संविधान विरोधी नहीं दिखता, जबकि ओबीसी के आरक्षण (मंडल आयोग) को उसने 2 सालों तक रोके रखा। ये वही सुप्रीम कोर्ट है, जिसने बिना किसी सबूत के बाबरी मस्जिद को रामजन्मभूमि घोषित कर दिया। लेकिन एक तरफ कहता है कि वहाँ मन्दिर था, फिर वहाँ मस्जिद बनाने का भी आदेश दे दिया। ये वही सुप्रीम कोर्ट है, जो कश्मीर से अनुच्छेद-370 हटाया जाना वैधानिक है या नहीं, उस पर एक वर्ष से कुंडली मारे बैठा है। ये वही सुप्रीम कोर्ट है, जिसे कश्मीर में लोगों को हिरासत में रखने और मानवाधिकारों के उल्लंघन के खिलाफ याचिकाओं को सुनने का वक्त नहीं है। यह देश की सबसे बड़ी अलोकतांत्रिक संस्था है, जिसमें बिना किसी चुनाव या परीक्षा के जज नियुक्त होते हैं और ज्यादातर कुछ परिवारों और कुछ जातियों से नियुक्त होते हैं। यह असहमति की आवाजों को कुचलने में पूरी तरह संघ-भाजपा के साथ खड़ी है।

वरिष्ठ पत्रकार शेखर गुप्ता ने भी सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले पर टिप्पणी की। उन्होंने कहा कि प्रशांत भूषण पर अवमानना का जो आदेश आया है, उस पर अगर हम कुछ कह सकते हैं तो ये कि एक महान संस्थान खुद को नीचा दिखा रही है। इतिहासकार पुष्पेश पंत ने भी प्रशांत भूषण पर सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बाद ट्विटर पर इसे एक भयानक फैसला बताया। उन्होंने लिखा कि प्रशांत भूषण के खिलाफ कंटेंप्ट ऑफ कोर्ट को लेकर जो आतंकित कर देने वाला फैसला आया है। उसके बाद तमिल फिल्म 'मैं चुप रहूंगी' का हिंदी रीमेक बनाया जा सकता है। वरिष्ठ पत्रकार और सुप्रीम कोर्ट में अवमानना कानून को चुनौती देने वाले एन राम ने इस फैसले को लेकर कहा कि ये अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के हमारे मौलिक अधिकार के लिए एक काला दिन है, जो हमारे लोकतांत्रिक संविधान और आज़ादी के संघर्ष की देन है।

प्रशांत भूषण के खिलाफ जारी इन मामलों को लेकर स्वराज इंडिया के प्रमुख योगेंद्र यादव पहले से ही सवाल उठाते आए हैं। लेकिन जब कोर्ट की तरफ से प्रशांत भूषण को दोषी करार दिया गया तो योगेंद्र यादव ने ट्विटर पर लिखा कि ये तो होना ही था। इसके अलावा उन्होंने एक दूसरे ट्वीट में नाट्यकर्मी मंजुल भारद्वाज के हवाले से लिखा है कि 'प्रशांत भूषण सुनो! सत्य सूली पर चढ़ेगा, यह सुकरात काल है! जिनके न्याय के लिए लड़ रहे हो, वे विकास के लिए खामोश रहेंगे। मुर्दा समाज बोलता नहीं है'!

इतिहासकार रामचंद्र गुहा ने इस मामले को लेकर ट्विटर पर भी कहा कि सुप्रीम कोर्ट ने इससे खुद का कद नीचे किया है। उन्होंने लिखा है कि इस फैसले से सुप्रीम कोर्ट ने खुद को और लोकतंत्र को नीचा दिखाया है। ये भारतीय लोकतंत्र के लिए एक काला दिन है। जाने माने इतिहासकार इरफान हबीब ने प्रशांत भूषण को दोषी ठहराए जाने की तुलना ब्रिटिश हुकूमत से की। उन्होंने लिखा कि सुप्रीम कोर्ट ने स्वतंत्रता दिवस की शाम को प्रशांत भूषण को दोषी करार दिया। मुझे नहीं लगता है कि ब्रिटिश काल में भी किसी विरोध या आलोचना करने वाले वकीलों, कवियों, लेखकों और बुद्धिजीवियों को इस तरह सजा दी गई हो। **-जे पी सिंह**

सुप्रीम कोर्ट में प्रशांत भूषण का बयान

कोर्ट द्वारा दोषी ठहराए जाने के फैसले से मैं बहुत दुखी हूं। मैं इस बात को लेकर दुखी हूं कि मुझे पूरी तरह से गलत समझा गया। मैं इस बात से बेहद चकित हूं कि मेरी मंशा पर बगैर कोई सबूत दिए, कोर्ट अपने निष्कर्ष पर पहुंच गया। मेरा यह मानना है कि संवैधानिक व्यवस्था की रक्षा के लिए किसी भी लोकतंत्र के भीतर खुली आलोचना जरूरी है। संवैधानिक व्यवस्था को बचाने का काम निजी और प्रोफेशनल दोनों स्तरों पर होना चाहिए। मेरे ट्वीट उसी दिशा में एक छोटा सा प्रयास हैं, जिसे मैं अपना सबसे बड़ा कर्तव्य समझता हूं।

गांधी को कोट करते हुए प्रशांत भूषण ने कहा कि मैं दया नहीं मांगूंगा। मैं उदारता की भी अपील नहीं करूंगा। मैं पूरी खुशी के साथ उस सजा के लिए खुद को पेश करता हूं, जो कोर्ट मुझे देगा। मेरे ट्वीट मेरे लिए एक नागरिक के तौर पर अपना कर्तव्य निभाने का एक प्रामाणिक प्रयास थे। इतिहास के इस मोड़ पर अगर मैं नहीं बोलता तो मैं अपने कर्तव्यों को पूरा करने में नाकाम हो जाता। कोर्ट जो भी सजा देगा, उसके लिए मैं तैयार हूं। मांफी मांग कर मैं बेहद तिरस्कृत महसूस करूंगा।

लाल किले पर सपनों का सौदागर

❑ डॉ. सिद्धार्थ

इस सच से इंकार करना तथ्यों से मुंह मोड़ना होगा कि नरेंद्र मोदी हमारे समय में सपनों के सबसे शातिर सौदागर हैं। इस मामले में उनके सामने दुनिया का कोई नेता नहीं ठहरता है। वे अतीत की अपनी सारी नाकामी एवं असफलता को भविष्य का शानदार सपना दिखाकर पूरी तरह छिपा लेते हैं। वे यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि कौन-सा सपना कब और कैसे बेचा जा सकता है और किन सपनों के कौन-से समुदाय और वर्ग खरीदार हैं। वे सबसे पहले खरीदारों की आकांक्षाओं की पहचान करते हैं, फिर उन्हें उनका मनचाहा माल बेचते हैं। बेचने की सबसे जरूरी शर्त यह होती है कि अपने खराब से खराब माल की (चाहे वह सपना ही क्यों न हो) खूबियों को ऐसी भाव-भंगिमा एवं भाषा के साथ बेचने के लिए प्रस्तुत किया जाए कि खरीदने वाला खरीदने के लिए लालायित हो जाए। खरीदार को माल की गुणवत्ता पर थोड़ा भी शक न हो, बल्कि उसे लगे कि यह तो वही चीज है, जिसकी मुझे वर्षों से चाह थी। सच तो यह है कि मोदी जी शातिर सौदागर की तरह गोबर को भी हीरे के भाव बेच सकते हैं और पिछले 6 वर्षों से वे ऐसा ही कर रहे हैं, यही काम उन्होंने गुजरात का मुख्यमंत्री रहते हुए भी किया।

इस बार लाल किले से प्रधानमंत्री ने डेढ़ घंटे तक सपना बेचा और अपने हर भाषण की तरह अपनी उपलब्धियों के लिए खुद की पीठ भी थपथपायी। लाल किले से उन्होंने सबसे बड़ा सपना भारत को दुनिया का सर्वश्रेष्ठ देश बनाने का दिखाया, जो हर मामले में दुनिया में सबसे आगे होगा। प्रधानमंत्री जी ने अपनी भाव-भंगिमा और भाषा से यह भी संकेत दिया कि यह सपना बहुत जल्दी ही पूरा होने वाला है। भारत को दुनिया के सर्वश्रेष्ठ देश के रूप में देखने का सपना अधिकांश भारतीयों का सपना है, बल्कि लंबे समय की पराजय के हीनताबोध से पीड़ित भारतीयों की कुंठा को यह सपना पंख लगा देता है। डोनाल्ड ट्रम्प 'अमेरिका फर्स्ट' का नारा देकर अमेरिका के राष्ट्रपति बने थे और उन्होंने अमेरिका को और गर्त में धकेल दिया, यही हाल ब्राजील के राष्ट्रपति बोल्सनारो का भी है। हिटलर ने भी जर्मनी को दुनिया का सर्वश्रेष्ठ देश बनाने का सपना दिखाकर ही करोड़ों लोगों को अपने साथ किया था और उन्हें जर्मनी को सर्वश्रेष्ठ देश बनाने का सपना पूरा करने के लिए यहूदियों का कत्लेआम करने और दूसरे देशों का विध्वंस करने के लिए भी तैयार कर लिया था। प्रथम विश्वयुद्ध में जर्मनी की पराजय की कुंठा ने इसमें अहम भूमिका निभाई थी। व्यक्ति हो या राष्ट्र, सर्वश्रेष्ठता की चाह और दावेदारी होती बहुत आकर्षक है, इसका मोहपाश बहुत प्यारा होता है, लेकिन यह विध्वंसक एवं विनाशक भी होता है, जो अंततोगत्वा व्यक्ति एवं राष्ट्र को विनाश की ओर ले जाता है।

प्रधानमंत्री ने भूल से भी इसका जिक्र नहीं किया कि पिछले 6 वर्षों में भारत को सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र बनाने की दिशा में उन्होंने ठोस तौर पर क्या किया और उसमें उनकी कामयाबी एवं नाकामयाबी क्या है? उन्होंने यह भी नहीं बताया कि क्यों और कैसे भारत सभी बुनियादी आर्थिक पैमानों पर पिछले 6 वर्षों में पिछड़ गया है, जीडीपी की विकास दर भी घटकर औसत 8 प्रतिशत (यूपीए के काल) से करीब 4 प्रतिशत हो गई और बेरोजगारी ने 45 वर्षों का रिकार्ड तोड़ दिया, वह भी कोरोना से पहले ही।

भारत को सर्वश्रेष्ठ देश बनाने के सपने के साथ मोदी जी ने सबसे बड़ा सपना कृषि एवं किसानों की उन्नति एवं समृद्धि का दिखाया। यह हमारे देश के नेताओं द्वारा दिखाया जाने वाला हमेशा का सपना रहा है, इस बार मोदी जी ने इसे पूरा कर दिखाने का जो-शोर से संकल्प लिया। फिर उन्होंने मध्म वर्ग को कुछ बड़े सपने दिखाए, जिसमें अपने घर का सपना भी शामिल है। यह वही मध्यवर्ग है जिसकी कमर वे पिछले 6 वर्षों में करीब-करीब तोड़ चुके हैं और रही-सही कसर पूरा करने का कार्यक्रम भी उन्होंने विभिन्न रूपों में प्रस्तुत कर दिया है, जिसमें हाल में उनके द्वारा घोषित टैक्स सुधार भी शामिल हैं।

जम्मू-कश्मीर एवं लद्दाख में क्या-क्या बेहतर हुआ है, इसके लिए अपनी पीठ थपथपाते हुए प्रधानमंत्री जी ने इन क्षेत्रों को स्वर्ग बनाने का ख्वाब ऐसे प्रस्तुत किया, जैसे इसके पहले ये पिछड़े हुए नरक थे। मजदूरों, किसानों एवं महिलाओं के सामने खुद की दाता की छवि प्रस्तुत करने से इस बार भी वे बाज नहीं आए, जो कुछ इन वर्गों को सरकार द्वारा दिया गया है, उसके वर्णन के तरीके से लगा, जैसे यह उनका हक नहीं था, बल्कि प्रधानमंत्री की कृपा थी।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भी चेतावनी दी है कि भारत में कोरोना का संकट विश्व में सबसे ज्यादा गंभीर होता जा रहा है, लेकिन प्रधानमंत्री ने इस संदर्भ में एक शब्द भी नहीं बोला। हां उन्होंने मास्क बनाने, पीपी किट बनाने, वेंटिलेटर बनाने और टेस्टिंग सुविधा बढ़ाने के संदर्भ में अपनी पीठ जरूर थपथपाई। वर्तमान में कोरोना से निपटने के सवाल को भविष्य में आने वाले टीके के सपने के भरोसे छोड़ दिया और इस तरह कोरोना से निपटने में अपनी नाकामी को छिपा लिया। ❑

गांधी प्रतिमा पर माल्यार्पण

भारत छोड़ो आंदोलन की 78वीं वर्षगांठ के अवसर पर 9 अगस्त 2020 को सर्व सेवा संघ परिसर, वाराणसी में स्थापित की गयी गांधी प्रतिमा पर माल्यार्पण कार्यक्रम संपन्न हुआ। कोविड-19 के वर्तमान माहौल में प्रशासन की तरफ से विस्तृत अनावरण समारोह की अनुमति न मिलने के कारण कार्यक्रम का स्वरूप अंतिम क्षणों में बदलकर संक्षिप्त कर दिया गया। परिसरवासियों के अलावा कार्यक्रम में भाग लेने के लिए बहुत कम संख्या में लोग आ सके। उल्लेखनीय है कि उस दिन रविवार होने के कारण उत्तर प्रदेश में साप्ताहिक तालाबंदी का दिन भी था।

एसडीएम सदर मदन मोहन वर्मा अपने साथियों के साथ पूरे उत्साह के साथ कार्यक्रम में शामिल हुए। गांधी चबूतरे को चारों तरफ से फूलमाला से सजाया गया और आगंतुकों ने प्रतिमा पर माल्यार्पण करके राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के सम्मान में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। कार्यक्रम सम्पन्न होने तक कार्यक्रम में भाग लेने वालों के बीच अनौपचारिक विचार गोष्ठी चलती रही। सर्व सेवा संघ प्रकाशन के कार्यकर्ताओं ने पूरी व्यवस्था संभाली। लगभग दो घंटे तक चले इस कार्यक्रम में अलग-अलग समूहों में आने और भाग लेने वालों की संख्या अधिक न होने पाये, इसका ख्याल रखा गया। संध्या 5 बजे आगंतुकों की विदाई के साथ ही कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

एक शातिर सौदागर या नेता की सबसे बड़ी सफलता यह होती है कि जिस मामले में वह पूरी तरह नाकारा एवं असफल साबित हुआ हो, उस मामले में भी अपनी सफलता का भरोसा दिला दे। यह कार्य उन्होंने चीन के साथ सीमा पर सैन्य टकराव के संदर्भ में बखूबी किया। यह जगजाहिर तथ्य है कि चीन ने भारत के एक हिस्से पर नियंत्रण कर लिया है और इस संदर्भ में हुए सैन्य टकराव में भारत के 20 सैनिक मारे भी गए। इस सारे घटनाक्रम ने यह साबित किया कि मोदी की चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग के साथ व्यक्तिगत स्तर पर संबंध कायम करने और उसे अपनी सफलता बताने की कार्यनीति पूरी तरह नाकाम हुई, लेकिन सैनिकों के बलिदान का नाम लेकर वे ऐसे बोल रहे थे, जैसे भारत ने ही चीन को सबक सिखा दिया हो और पूरे टकराव में भारत की स्थिति मजबूत हो।

करीब सभी पड़ोसी देश धीरे-धीरे भारत का साथ छोड़कर चीन के साथ अपने रिश्ते घनिष्ठ कर रहे हैं, जिसमें नेपाल एवं बांग्लादेश भी शामिल हैं, लेकिन मोदी जी ऐसे बोल रहे थे, जैसे सारे पड़ोसी उनके साथ खड़े हों। दुखद है कि भारत की जनता का एक बड़ा हिस्सा उनके झूठ को स्वीकार भी कर लेता है। मोदी जी ने जितने सपने दिखाए, उसको पूरा करने के लिए उन्होंने आत्मनिर्भर होने का मंत्र दिया और इसके लिए सुधार जरूरी बताए यानि सारे सपने तब पूरे होंगे, जब देश के प्राकृतिक संसाधनों, सार्वजनिक इकाइयों और सार्वजनिक धन को देशी-विदेशी पूंजीपतियों को सौंप दिया जाएगा और सरकार का काम टैक्स वसूलना तथा सच्चाई को उजागर करने वाले लोगों एवं जनता के साथ संघर्ष करने वाले लोगों को देशद्रोही ठहराना और जेल भेजना रह जाएगा।

अच्छे दिन का सपना, काला धन वापस लाने का सपना, सबके लिए रोज़गार का सपना और भ्रष्टाचार की समाप्ति का सपना, सपना ही रह गया। विपक्षी राजनीतिक पार्टियां या तो समर्पण कर चुकी हैं या ट्वीट-ट्वीट का खेल खेल रही हैं। हां एक छोटा सा हिस्सा सच को उजागर कर रहा है, लड़ रहा है, लाठी गोली खा रहा है, जेल जा रहा है, लेकिन विपक्षी पार्टियों और बुद्धिजीवियों का बड़ा हिस्सा इंतजार कर रहा है कि जनता एक दिन अपने आप इस शातिर सौदागर को समझ लेगी और इसे सत्ता से बाहर कर देगी। लेकिन शायद तब तक इस देश और समाज के लिए बहुत देर हो चुकी होगी। **-जन चौक**

भारत-चीन सीमा तनाव
गांधी जी होते तो क्या करते!

❑ अखिलेश श्रीवास्तव

चीन के साथ सीमा पर तनाव के बाद बड़े ही आश्चर्यजनक रूप से भाजपा और संघ के साथ बहुत से मार्क्सवादी समूह, मुक्तिवादी और तथाकथित गाँधीवादी एक सुर में चीन से अंतराष्ट्रीय व्यापार का बहिष्कार करने की सलाह दे रहे हैं। यह एकता अप्रत्याशित है। इस सलाह के पीछे हालांकि चीन के साथ युद्ध में हार जाने के डर का मनोविज्ञान और अर्थशास्त्र की बुनियादी समझ का अभाव ही मुख्य वजह है। इतने बड़े स्तर पर इस विचार को मिले लोगों के समर्थन ने पूरी दुनिया में ऐसी धारणा बनाई है, मानो इसे भारत के तमाम राजनैतिक और वैचारिक समूहों का समर्थन हो, जबकि इस समर्थन से भारत की विश्व के देशों में भद्द पिट रही है।

विश्व व्यापार संगठन की सलाह पर जब दुनिया के देशों ने उदार अर्थव्यवस्था को अपनाया तो केवल 1990 से 2000 के बीच पूरी दुनिया में 100 करोड़ लोग गरीबी रेखा से ऊपर आ गये, जिसमें सबसे ज्यादा लगभग 40 करोड़ चीन में और बाकी भारत और अफ्रीकी देशों के गरीब थे। जिन्होंने चीन का इतिहास पढ़ा है, उन्हें पता होगा कि माओ ने जब अपने लोगों को कहा कि कृषि छोड़कर लोहा गलाओ तब लगभग 10 करोड़ चीनी भुखमरी की कगार पर आ गये थे और हजारों की मौत भुखमरी से हो गयी थी।

अब अगर इन लोगों की चीन से अंतराष्ट्रीय व्यापार बंद करने वाली सलाह मान ली जाए, तब वे 40 – 50 करोड़ चीनी, जो गरीबी रेखा से ऊपर आ चुके हैं, फिर उसी गरीबी में चले जाएंगे और भूखों मरेंगे। मैं भारत की जनता की स्थिति पर बाद में आता हूँ। भारत की लड़ाई चीनी जनता के साथ है या चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के खिलाफ? युद्ध एक राजनैतिक सवाल है या आर्थिक? अंतर्राष्ट्रीय व्यापार आत्मनिर्भरता का विलोम है या पूरक? किसी भी अर्थशास्त्री या मार्क्स ने ऐसा कहीं लिखा है कि युद्ध की स्थिति में आर्थिक संबंध विच्छेद कर लेने चाहिए? कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो में या दास कैपिटल में इसका कोई सन्दर्भ आता है?

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का जनक डेविड रेकार्डों को माना जाता है, जिनका जन्म 1772 में हुआ। उन्होंने अर्थशास्त्र समझना शुरू किया वेल्थ ऑफ़ नेशंस पढ़ने के बाद। वेल्थ ऑफ़ नेशंस लिखा था आदम स्मिथ ने, जिन्हें आधुनिक अर्थशास्त्र का जनक माना जाता है और जिनका जन्म 1723 में हुआ था। मार्क्स, जिन्होंने डेविड रिकार्डों को पढ़ा और उन्हें उस सदी का सबसे बड़ा अर्थशास्त्री करार दिया, उन्होंने यह दुख प्रकट किया कि रिकार्डों ने अपने क्लास कनफ्लिक्ट वाले सन्दर्भ को आगे नहीं बढ़ाया क्योंकि वे कम आयु में ही स्वर्ग सिधार गये।

क्या गांधी जी ने कहीं युद्ध के समय दुश्मन देश से व्यापार बंद करने की बात कही है? गांधी जी की बहुत प्रसिद्ध उक्ति है, 'मैं अपने घर के सारे दरवाजे और खिड़कियां खुली रखना चाहता हूँ'। गांधी जी अगर आज होते तो चीन के भारतीय सीमा में घुस आने पर क्या कहते और क्या करते? गांधी जी कहते कि चीनी सेना को भारतीय सीमा से बाहर करना चाहिए, इसके लिए युद्ध होता है तो हो, पर उसे अपनी सीमा में बर्दाश्त करना तो परले दर्जे की कायरता है और कायरता अहिंसा का निषेध है।

गांधी जी खुद क्या करते? वे अकेले सीमा पर चले जाते, खाली हाथ और चीनी सेना को रोकने की कोशिश करते! उनके साथ लाखों सत्याग्रही मनुष्य सीमा पर चले जाते और गांधी जी उनसे कहते कि चीनी सेना को हर हाल में रोकना है और तब तक जूझना है, जब तक चीनी सैनिक आपकी हत्या न कर दें या आप घायल होकर अशक्त न हो जायें। आज तो आप न हिंसा सिखा रहे हैं न अहिंसा। आप तो कायरता सिखा रहे हैं। **-मीडिया स्वराज**

11 सितंबर
विनोबा जयंती; सत्याग्रह दिवस

प्रथम सत्याग्रही–विनोबा भावे

❑ ओम प्रकाश कश्यप

दक्षिण भारत के कई मंदिरों में हरिजनों के प्रवेश की मनाही थी. गांधी जी पहले ही कह चुके थे कि अस्पृश्यता हिंदू समाज के माथे पर कलंक है. उनके इसी वक्तव्य को मंत्र मानते हुए विनोबा ने हिंदू समाज में व्याप्त अस्पृश्यता और जात-पांत के विरुद्ध कई लेख अपनी पत्रिका में लिखे थे. विनोबा की निष्ठा और समर्पण भाव को देखते हुए 1925 में गांधी जी ने उन्हें केरल के वाइकोन नामक स्थान पर एक आंदोलन का नेतृत्व करने का दायित्व सौंपा. आंदोलन हरिजनों की अस्मिता और उनके मंदिर-प्रवेश के अधिकार को लेकर था. विनोबा ने उस आंदोलन का सफलतापूर्वक नेतृत्व कर गांधी जी के भरोसे को पूरा किया. 1932 में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए सरकार बिनोवा से नाराज हो गई. उन्हें छह महीने की सजा सुनाई गई. धुलिया जेल में सजा काटते हुए विनोबा अपने रचनात्मक कार्यक्रमों पर निरंतर काम करते रहे. लगातार परिश्रम और जेल के प्रतिकूल वातावरण का प्रभाव विनोबा की सेहत पर पड़ा था. वे दिनोंदिन कमजोर होते जा रहे थे. 1938 में उन्हें गंभीर बीमारी ने आ घेरा, तब गांधी जी ने उन्हें कुछ दिन आराम करने की सलाह दी.

पवनार में जमनालाल बजाज का बंगला खाली पड़ा हुआ था. गांधी जी स्वयं चाहते थे कि वर्धा में भी साबरमती जैसा आश्रम स्थापित किया जाए, ताकि स्वाधीनता आंदोलन को गतिमान बनाया जा सके. वर्धा की जलवायु भी अनुकूल थी. गांधी जी का आग्रह विनोबा के लिए आदेश ही था. उन्होंने वर्धा जाने की सहमति दे दी. एक दिन गांधी जी से अनुमति लेकर उन्होंने पवनार के लिए प्रस्थान कर दिया. आगे चलकर वही उनकी गतिविधियों का प्रमुख केंद्र बना. वहीं रहते हुए उन्होंने अनेक सत्याग्रह आंदोलनों का नेतृत्व किया. वहीं से राजनीतिक आंदोलनों में सक्रिय भागीदारी की.

आजादी की लड़ाई अहिंसक तरीके से लड़ी जाने वाली थी. गांधी जी उसके माध्यम से दुनिया को संदेश देना चाहते थे कि भारत अपनी स्वाधीनता के प्रति प्रतिबद्ध है. जनता और सरकार दोनों को सही संदेह जाए, इसके लिए आंदोलन का जोरदार शुभारंभ महत्त्वपूर्ण था. उसके लिए एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी, जिसकी गांधी जी के नैतिक सिद्धांतों में न केवल पूरी आस्था हो, बल्कि उसका अपना प्रभामंडल भी कम दैदीप्यमान न हो. जनता का उस पर अटूट विश्वास भी हो. इसके लिए गांधी जी के दिमाग में सिर्फ एक व्यक्ति का नाम था. वे थे विनोबा भावे, जिन्हें लोग प्यार से आचार्य विनोबा भावे कहने लगे थे. गांधी जी की अनुशंसा पर विनोबा को 1940 में प्रथम सत्याग्रही चुना गया. उस समय तक बहुत से लोग नहीं जानते थे कि विनोबा नामक यह शख्स कौन है, जिसपर गांधी जी ने इतना बड़ा भरोसा किया है. लोग प्रथम सत्याग्रही के बारे में जानने को उत्सुक थे. लोगों की जिज्ञासा शांत करने के लिए स्वयं गांधी जी ने विनोबा का परिचय कराते हुए लिखा कि— 'विनोबा भारतीय स्वाधीनता में विश्वास करते हैं. वे इतिहास के विद्वान हैं. लेकिन उनका मानना है कि भारत के गांवों की वास्तविक आजादी बिना रचनात्मक कार्यक्रमों के असंभव है, और यह रचनात्मक कार्यक्रम खादी है.'

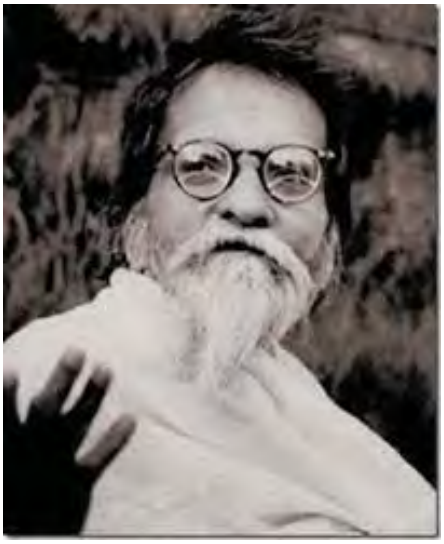

प्रथम सत्याग्रही चुने जाने और गांधी द्वारा परिचय कराए जाने के बाद विनोबा की ख्याति पूरे देश में फैल गई. विनोबा ने भी बापू के विश्वास की रक्षा की. अंग्रेज सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह आंदोलन का शुभारंभ उन्होंने नागपुर से किया. आंदोलन पूरी तरह कामयाब रहा. देश गांधी की भांति विनोबा पर भी भरोसा करने लगा. उसके बाद तो एक के बाद एक कई सत्याग्रह आंदोलनों में हिस्सा लेते हुए विनोबा को 1940 से 1941 के बीच तीन बार जेल जाना पड़ा. पहली बार तीन महीने के लिए. दूसरी बार छह महीने और तीसरी बार एक वर्ष के लिए. 1942 में गांधी जी ने भारत छोड़ो आंदोलन का आह्वान किया तो अहिंसा के प्रशिक्षित सैनिक की तरह विनोबा भावे फिर उस आंदोलन में कूद पड़े. तब तक अंग्रेज सरकार उनके पीछे पड़ चुकी थी. परिणाम यह हुआ कि वे पकड़ लिए गए. इस बार उन्हें तीन वर्ष तक वेलूर और सियोनी जेलों में रखा गया. हमेशा की तरह इस बार भी कारावास की अवधि का उपयोग उन्होंने अध्ययन और लेखन के लिए किया. गीता के अनुवाद-कर्म को आरंभ किए वर्षों बीत चुके थे. अंततः वेलूर जेल में सजा काटते हुए वह अवसर आया, जब विनोबा ने 'गीताई' को अंतिम रूप दिया. विनोबा का यह जेल प्रवास अनेक रचनात्मक उपलब्धियों से भरा हुआ था.

वैलूर जेल में देश के विभिन्न प्रांतों से आए हुए कैदी थे. आपस में संवाद के लिए वे प्रायः अंग्रेजी का प्रयोग करते. विनोबा को यह बहुत बुरा लगता. जिन अंग्रेजों से वे स्वाधीनता के लिए संघर्ष कर रहे हैं, आपसी संवाद के लिए उनकी भाषा पर निर्भरता क्यों हो! लोगों को यह संदेश देने के लिए कि वे एक-दूसरे की भाषाएं सीखें, उन्होंने जेल प्रवास के दौरान तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम भाषाएं सीखीं. उनके अध्ययन-पाठन को आसान बनाने के लिए उन्होंने 'लोकनागरी लिपि' का आविष्कार भी किया, जिसमें वे चारों भाषाएं सफलतापूर्वक लिखी जा सकती हैं. उर्दू वे सेवाग्राम में रहते हुए न केवल सीख चुके थे, बल्कि प्रवीणता भी प्राप्त कर चुके थे.

विनोबा द्वारा धर्म, दर्शन पर लिखी गई पुस्तकें अनेक भाषाओं में प्रकाशित हुईं और उन्हें एक आध्यात्मिक संत की पहचान मिलने लगी. देश-भर में अंग्रेजी विरोध की लहर बढ़ती ही जा रही थी. गांधी के नेतृत्व में उनकी पूरी अहिंसक सेना आंदोलन में हिस्सा ले रही थी. विनोबा भी उसमें सम्मिलित थे.

आजादी के बाद देश के पुनर्निर्माण की आवश्यकता थी. नई भूमिका के लिए वे चाहते थे कि आजादी के बाद कांग्रेस के कार्यकर्ता गांव-गांव जाकर रचनात्मक कार्यक्रमों का संचालन करें. वे गांवों को आत्मनिर्भर देखना चाहते थे. गांधी जी के सपने को ही अपना दायित्व मानते हुए विनोबा ने कई रचनात्मक कार्यक्रमों की शुरुआत की. उन्होंने बैलों की सहायता के बिना खेती का प्रारूप देश के सामने रखा. विभाजन के बाद समस्या थी, पाकिस्तान से आए शरणार्थियों को बसाने की. विनोबा इसमें भी जी जान से जुटे रहे. भारत-पाकिस्तान विभाजन के दौरान हुए दंगों के बाद शांति-स्थापना के कार्य में भी उन्होंने बढ़-चढ़कर योगदान किया. ❑

यहां पराया कौन है!

❑ चित्रा वर्मा/मदन मोहन वर्मा

कछुए और खरगोश की कहानी हम सभी जानते हैं। दौड़ में कछुआ जीत गया और खरगोश हार गया था। अब इसके आगे की कहानी सुनिये। दोनों मित्र ही थे। दिन भर खरगोश अपनी हार पर दुखी रहा और कछुआ अपनी जीत पर इतराता रहा। जब शाम को खाना खाने बैठे तो खरगोश को रहा नहीं गया। उसने सोचा कि इतना धीमे-धीमे तो चलता है कछुआ; जबकि मैं तेज दौड़ता हूं। अगर मैं सो न गया होता तो आज दुखी न होता। खरगोश ने कछुए से कहा कि कल फिर दौड़ होगी। कछुआ सहमत हो गया। अबकी बार खरगोश नहीं सोया और उसने दौड़ जीत ली। अब आज दिन भर कछुआ दुखी रहा और खरगोश की खुशी का ठिकाना नहीं था। जब शाम को खाना खाने बैठे तो अबकी कछुए ने कहा कि कल फिर दौड़ होगी; लेकिन दूसरी दिशा में होगी। एक बार गलती करके खरगोश चैतन्य हो चुका था। नहीं सोऊंगा तो कभी नहीं हारूंगा, यह सोचकर उसने भी हामी भर दी। अगले दिन दोनों दूसरी दिशा में दौड़े तो रास्ते में नाला आ गया। यहां खरगोश फंस गया, लेकिन कछुए ने तैरकर नाला पार कर लिया। एक बार फिर कछुए की जीत हुई। लेकिन एक बदलाव भी हुआ। अब दोनों ही दोनों का दुख और दोनों ही दोनों की खुशी महसूस कर पा रहे थे। दोनों ही सोच रहे थे कि जीतने की खुशी भी एक दिन की होकर रह गयी और हारने का दुख भी एक दिन का होकर रह गया। दोनों ही थोड़े दुखी थे और दोनों ही थोड़े खुश। दोनों ही इस सुख और इस दुख से पार जाना चाहते थे।

एक बार फिर शाम हुई, दोनों फिर खाना खाने बैठे और दोनों ने फिर तय किया कि कल फिर दौड़ होगी। आज दोनों का हृदय बदला हुआ था। दोनों मैदान में आये, खरगोश ने कछुए को अपनी पीठ पर बैठा लिया और दौड़ पड़ा। नाले पर आकर जब खरगोश रुका तो कछुए ने पानी में उतरकर खरगोश को अपनी पीठ पर बैठा लिया। अबकी नाले के उस पार दोनों साथ-साथ पहुंचे। आज दोनों ही खुश थे। हार का रंज भी नहीं था और जीत की खुशी भी स्थाई थी। दोनों को दोनों का मूल्य पता चल चुका था। दोनों को ही ऐसी किसी प्रतियोगी रेस की निरर्थकता समझ में आ चुकी थी। एक दूसरे के खिलाफ खड़े होने के बजाय एक दूसरे के साथ खड़े होने की इस समरसता से प्राप्त खुशी ने दोनों को जीवन का वास्तविक मर्म समझा दिया था।

जीवन में हार-जीत का खेल उचित नहीं होता। सब तो अपने ही हैं, पराया कोई नहीं है। हम तो पूरी वसुधा को ही अपना परिवार मानने वाले लोग हैं। सामने जब कमजोर व्यक्ति होता है, तो हमारा अहंकार बलवती हो जाता है और जब सामने कोई ताकतवर होता है, तो हमारा अहंकार डूब जाता है। अधिकांशतः पाया जाता है कि मनुष्य अपने अधीनस्थ को किसी न किसी प्रकार शासित करने का प्रयास करता है और अपने उच्चस्थ के गलत आचरण के प्रति नतमस्तक बना रहता है। फिलीपींस की एक कथा सुनाता हूं। वहां एक कबीले में जब कोई बच्चा सपना देखता है कि उसने किसी को चाटा मारा, तो जागने पर उससे माफी मंगवायी जाती है कि भूल हो गयी। इस तरह उसमें सबके साथ समानता, अपनेपन व सम्मान की भावना जगाने का प्रयास किया जाता है। अब आप सोचिये कि जो सपने में भी भूल करने पर धीरे-धीरे जागने लगते हैं, उनसे जागरण में कैसे भूल होगी? इसलिए यह कबीला पृथ्वी का सबसे सभ्य कबीला है। इस कबीले में आज तक न कोई हत्या हुई, न चोरी हुई, न आत्महत्या हुई, न युद्ध हुआ, न कोई बीमार या पागल हुआ। यह अपूर्व घटना है। खुशी देने का अधिकार सबको है। दुख देने का अधिकार किसी को नहीं है। जब हम बच्चों को बचपन में सिखाते हैं कि मार कर आना, मार खाकर मत आना, तो इस विचारधारा से हम समाज में उपद्रव पैदा करते हैं, समाज में हिंसा फैलाते हैं, दूसरों के बीच नफरत और घृणा फैलाते हैं, जिससे हम एक दूसरे से दूर होते जाते हैं। जबकि इस प्रतिस्पर्धा भाव की, मार कर आने की, हरा कर आने की कोई जरूरत ही नहीं है, क्योंकि जीवन की ये क्षणिक भंगिमाएं

हमारे जीवन मूल्यों से ऊपर नहीं है। हमारे मूल्य हमारा निर्माण करते हैं, जबकि ये क्षणिक आवेग विनाश की ओर ले जाते हैं, पराभव की ओर ले जाते हैं, हमें दुर्गुणों से भर देते हैं। किसी को पराजित करके मिलने वाली खुशी हमें अहंकार की तरफ ले जाती है और अहंकार से अधिक विनाशक दूसरी कोई भ्रांति नहीं होती।

जीवन में सारा उपद्रव अहंकार से होता है। इसी अहंकार के कारण हम लोगों के साथ अच्छा व्यवहार, मधुरवाणी और समानता का व्यवहार नहीं करते हैं। एक बार महात्मा बुद्ध के शिष्य से चीन के सम्राट ने कहा कि मेरा अहंकार मुझे बहुत परेशान करता है। इसी अहंकार के कारण मैंने इतना बड़ा साम्राज्य खड़ा किया, इतनी धन-दौलत है, फिर भी और अधिक पाने की मेरी तितिक्षा खत्म नहीं होती। इस अहंकार से मुझे छुड़ा दें। बुद्ध ने कहा - सुबह तीन बजे अकेले आना और केवल अहंकार को अपने साथ लाना, किसी और को साथ न लाना।

सम्राट सुबह तीन बजे पहुंचा तो बोधिधर्म ने पूछा - अहंकार ले आया? सम्राट ने कहा- आप कैसी बातें करते हैं महाराज? अहंकार कोई चीज तो नहीं है कि उसे अपने साथ ले आऊं। वह तो मेरे भीतर है। बुद्ध ने कहा - चलो, आधा काम तो हो गया। इतना तो पता चल गया कि वह बाहर नहीं है, बल्कि भीतर है। अब आंखें बंद करके बैठ जा और भीतर खोजकर बता कि वह कहां है। मैं डंडा लेकर तेरे सामने बैठा हूं। जैसे ही तुझे मिले, इशारा कर देना, पकड़कर उसे वहीं खत्म कर दूंगा। सम्राट आंखें बंद करके भीतर देखने लगा। तीन घंटे बीत गये, सूरज उगने लगा तो बोधिधर्म ने उसे हिलाया और पूछा - मिला कि नहीं?

सम्राट उनके चरणों में झुक गया और बोला - मैंने बहुत खोजा महाराज और पाया कि वह न भीतर है, न बाहर है। अहंकार तो सिर्फ एक भ्रांति है। इस भ्रांति के जाल को तोड़कर देखें तो पता चलेगा कि ये भ्रांतियां हमारा कितना नुकसान करती हैं।

व्यक्ति समाज की सबसे छोटी इकाई है। वह परिवार पर निर्भर है, परिवार समाज पर निर्भर है और समाज देश पर निर्भर है। हमारी यह परस्पर निर्भरता हमें एक दूसरे से जोड़ती है। गांधीजी ने कहा था कि सृष्टि में आपको कोई दो चीजें एक समान नहीं मालूम होंगी। हम जिस पेड़ के नीचे बैठे हैं, उसके दो पत्ते तथा दो शाखाएं भी एक जैसी नहीं हैं। यद्यपि उसकी जड़ एक ही है। परंतु समान न होते हुए भी ये सब जैसे एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, उसी प्रकार विभिन्नताओं से भरी मनुष्य जाति के बीच अनेक भेद होते हुए भी सभी आपसी स्नेह और औदार्य से जुड़े रह सकते हैं। अगर हमारे बीच का स्नेह रस सूखेगा तो गांधीजी याद दिलाते हैं कि यह हमारा ही देश है, जहां एक हजार की आबादी के गांव में आठ डाकू आते हैं, और पूरे गांव के सामने लूटपाट करके चले जाते हैं। यह हमारी सामाजिक कमजोरी का प्रतीक है, यह हमारे कमजोर आत्मबल और आपस के सूखते हुए स्नेह रस का परिणाम है। मनुष्य का मनुष्य से अन्योन्याश्रित संबंध है। हमें समझना चाहिए कि एक दूसरे पर हमारी निर्भरता का स्वरूप क्या है। आइए, कुछ उदाहरणों से समझने का प्रयास करते हैं।

मनुष्य ने अपने जीने के लिए जो व्यवस्थाएं बनायी हैं, उनका सूक्ष्म निरीक्षण करें तो इस पारस्परिक निर्भरता के सूत्र समझ में आते हैं। क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि कोई व्यक्ति अकेले जीवन गुजार सकता है? क्या आप ये सोच सकते हैं कि कोई एक परिवार अकेले रह सकता है? क्या कोई गांव अकेले अपनी जरूरतों की पूर्ति कर सकता है? इन सभी सवालों का एक ही उत्तर होगा - नहीं। जब कोई बच्चा जन्म लेता है तो उसके जन्म का श्रेय मात्र ही उसके माता-पिता का होता है। जन्म लेते ही उसकी दुनिया बड़ी होने लगती है। मां के पेट से निकलते ही वह परिवार और समाज के हवाले होने लगता है। कुछ दिन या कुछ महीने ही वह मां के दूध के सहारे जी सकता है। उसके बाद उसे भोजन और दवा की जरूरत पड़ेगी। वह जो भोजन खायेगा, उस भोजन के पीछे एक व्यवस्था काम कर रही है। दाल, चावल, आटा, दूध, यह सब कोई किसान पैदा करता है। खेतों की जुताई ट्रैक्टर से होती है, फसल की सिंचाई, फसल की कटाई, मड़ाई से लेकर घर की रसोई तक उसके पहुंचने की चेन इतनी बड़ी है कि उसमें सैकड़ों लोग प्रकट या प्रच्छन्न अपना योगदान कर रहे होते हैं। इस चेन में जो किसान, जो मजदूर, जो स्त्री, पुरुष, युवा और समाज शामिल है, वह अप्रत्यक्ष रूप से उस बच्चे का पोषण कर रहा है। उस बच्चे के लिए उनमें से कौन पराया रहा फिर? आपस की निर्भरता का यह नमूना दर्शनीय है।

कोई विद्यार्थी जब किसी विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा ग्रहण करता है, तो विश्वविद्यालय के इन्फ्रास्टक्चर, शिक्षकों, गैर-शैक्षणिक स्टाफ, क्लास, लाइब्रेरी, प्रयोगशाला आदि की जो सुविधाएं उसे मिलती हैं, यह सब क्या उसके खुद के संसाधनों के बल पर संभव है? इसके पीछे भी सरकार से लेकर समाज तक, शिक्षक से लेकर मित्रों तक, प्रशासक से लेकर आम नागरिक तक हजारों की एक चेन होती है, करोड़ों का खर्च होता है, तब कहीं जाकर एक विद्यार्थी हजार-दो हजार की फीस देकर वहां से उत्तम शिक्षा ग्रहण कर पाता है। समाज और सामाजिक व्यवस्था के तमाम पुर्जों के बीच की यह पारस्परिक निर्भरता कितना बड़ा और कितना सुखद परिणाम दे रही है, यह महसूस करने की चीज है।

जिस सड़क पर हम चलते हैं, जो कपड़ा हम पहनते हैं, जिस घर में हम रहते हैं, जिस अस्पताल में हम इलाज करवाते हैं, जिस रेल या बस में हम यात्रा करते हैं, प्रत्यक्ष मिलने वाली इन सुविधाओं के पीछे सैकड़ों विशेषज्ञों, तकनीकज्ञों, श्रमिकों, धनिकों और आम नागरिकों की एक चेन होती है। यह सब मिलकर हमारे लिए करोड़ों-अरबों में तैयार होने वाली व्यवस्थाएं खड़ी करते हैं, जिनका बहुत साधारण मूल्य चुकाकर हम उपभोग करते हैं। तो जिसने हमारे लिए घर बनाया, जिसने हमारे लिए सड़क बनायी, जिसने हमारे लिए कपड़ा बुना, जिसने हमारे लिए अनाज पैदा किया, जिसने हमारे लिए दवा बनायी, ये सभी हमारे अपने ही तो हुए। फिर पराया कौन है? एक निर्धन और साधन विहीन विद्यार्थी भी वही शिक्षा पा रहा है, जो सुविधासम्पन्न विद्यार्थी पा रहा है। यह कैसे संभव हुआ? एक चेन है, जिसमें यथास्थान अपना-अपना योगदान कर रहे लोगों की संख्या बहुत बड़ी है। ये तमाम लोग उस विद्यार्थी के लिए पराये कैसे रहे फिर?

जब कोई व्यक्ति बीमार होता है तो उसके आसपास के लोग, उसके पड़ोसी ही उसकी सहायता करते हैं, उसे अस्पताल ले जाते हैं। दूसरे शहर और जगहों पर रहने वाले लोग उनकी सहायता कहां कर पाते हैं। यहां तक कि अपने बच्चे तक दूर शहरों में रहने के कारण इमरजेंसी में भी सहायता नहीं कर पाते। जब किसी का मकान एकांत में होता है, तो उसे पड़ोसी की आवश्यकता का अहसास होता है। जब उसके आसपास लोगों के मकान बनने लगते हैं, तो उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहता। जब हमारे आसपास के लोग हमारे लिए इतने आवश्यक हैं, तो हम उनसे ईर्ष्या, द्वेष क्यों रखते हैं? हम व्यर्थ ही समाज के लोगों से अनावश्यक दूरी बनाते हैं। अधिकांश चीजें समाज में हमारे लिए स्वतः ही उपलब्ध हैं। कहीं आने-जाने के लिए सड़क, बस, रेल आदि उपलब्ध है। हम किसी भी रेलगाड़ी, बस में किराया देकर सफर कर सकते हैं। किसी भी स्कूल में फीस जमा करके अपने बच्चे को पढ़ा सकते हैं। सूर्य का प्रकाश, हवा, पानी सबके लिए उपलब्ध है। हमारी उक्त आवश्यकताओं की पूर्ति लोगों के प्रयास के कारण ही तो संभव है।

जब सब अपने हैं, कोई पराया नहीं है। लोगों के सहयोग के बिना जीवन जीना संभव नहीं है, तो फिर आपस में सामाजिक स्नेह न होने का कोई मतलब नहीं है। सुबह वाले को जितना, शाम वाले को भी उतना ही, प्रथम व्यक्ति को जितना, अंतिम व्यक्ति को भी उतना ही, अमीर को भी वही सम्मान, गरीब को भी वही सम्मान, दलित को भी वही सम्मान, पिछड़ों को भी वही सम्मान, अगड़ों को भी वही सम्मान, यह सामाजिक सद्भाव ही नैतिक विकास की प्रक्रिया है। इसमें समानता और अद्वैत का वह तत्त्व समाया है, जिस पर सर्वोदय का विशाल प्रासाद खड़ा है। यही सामाजिक सर्वोदय है, और यही गांधीजी के सपनों का भारत भी। ❑

भारत में लोकतंत्र का गला घोंटता फेसबुक

❑ रमाशंकर सिंह

आंखी दास भारत में फ़ेसबुक कंपनी की मुख्य अधिकारी हैं और फ़ेसबुक को नियंत्रित करके उसे कैसे एक राजनीतिक पक्ष या विचार की ओर झुकाना है, यह तय कर सकती हैं, बल्कि करती आयी हैं। आंखी दास अपने अमरीकी मालिकों पर यह दवाब बनाये रखती हैं कि यदि ऐसा नहीं किया तो भारत से व्यापार में घटोत्तरी संभव है। यानी मुनाफ़ा व्यापार के लिये फ़ेसबुक अपनी निष्पक्षता को बलाये ताक पर रख सकता है, रखता आया है। इस अमरीकी कंपनी से निष्पक्षता की उम्मीद हर बार रेगिस्तान में पहुँच जाती है।

लेकिन आंखी दास का पाप इससे भी ज्यादा बड़ा है। भारत में फ़ेसबुक ने सांप्रदायिक ज़हर को बढ़ाने में मदद की और पक्षपात पूर्ण ढंग से फ़ेसबुक मेट्रिक्स को इस प्रकार नियंत्रित रखा कि एक विशेष पक्ष के ज़हरीले बोल, भाषण, लेख, चित्र, मीम्स आदि बढ़ते गये और दूसरे पक्ष का गला घोंट कर रखा गया।

इस बीच छोटे और मध्यम आकार के कई दंगे हुये, मॉब लिंचिंग हुई, लोग मारे गये और फ़ेसबुक इन सबमें सक्रिय अपराधियों के सक्रिय मददगार की भूमिका में खड़ा रहा, कई बार तो हत्याओं का प्रेरक भी रहा। चुनावों में इस पक्षपात का असर स्पष्ट दिखा और फ़ेसबुक समर्थित पक्ष सत्ता में आया, यानी एक विदेशी कंपनी का यहां भी निंदनीय रोल रहा। यह सब अमेरिकी समाज में होता तो अब तक वहां कई 'वॉटरगेट' हो चुके होते।

लेकिन क्या मात्र मुनाफा ही आंखी दास को प्रेरित कर रहा था? जो यह मानेंगे व सोचेंगे तो सबसे बड़ी भूल कर जायेंगे। पिछले सत्तर बरसों में भारतीय लोकतंत्र में धीरे-धीरे जीवन के हर क्षेत्र में सुनियोजित ढंग से एक बृहद योजना के अंतर्गत एक विचार विशेष के लोग बनाये गये और वे हर स्थान पर बैठाये गये। यह ऐसा महाअभियान था, जो अंधी, बहरी, विलासी और सत्ताभिमान से लबरेज़ कांग्रेस को तो दिखना ही नहीं था, अन्यों को भी नहीं दिखा, क्योंकि वे तो संसद में सीटें गिन रहे थे।

जब 1984 के सिख नरसंहार के बाद हिंदू भावनाओं के उफान पर राजीव गांधी सत्ता में आये तो यह सफलतापूर्वक सिद्ध और तय हो गया कि भारतीय लोकतंत्र की नसों में पंथिक ज़हर पूरी तरह घुल चुका है। जिन्होंने वह दंगा अपनी आँखों से देखा है, उन्होंने उस समय भड़काऊ कांग्रेसी नेताओं के पीछे खड़े स्वयंसेवक भी देखे होंगे और दक्षिणपंथ के तत्कालीन सर्वोच्च सांगठनिक नेता नानाजी देशमुख का बयान भी, जिसमें सिख विरोधी हिंसा का बचाव किया गया था।

पंथिक विष पर आधारित लोकतंत्रीय राजनीति की बुनियाद उसी दिन पड़ गई थी। हमेशा की तरह अंधी कांग्रेस अपनी अभूतपूर्व विजय से मिली सीटों पर घमंड कर रही थी और दो सीट पाने वाली पार्टी चुपके से मंद मंद मुस्करा रही थी कि उसे केंद्र की सत्ता में पहुँचने का रास्ता साफ़ दिख चुका था।

कांग्रेस ने नेहरू के बाद भावी समाज के निर्माण की बाबत न कभी सोचा, न कुछ किया। कांग्रेस ने विकलांग सरकारी स्कूल बनाये तो दूसरी ओर हजारों 'शिशु मंदिर' बने। सरकारी स्कूल मरते चले गये और हज़ारों स्वयंसेवक सेवाभाव व मिशन की ख़ातिर वहां खप गये, जिन्होंने कम से कम तीन पीढ़ियों को अपने विचार से प्रशिक्षित कर दिया था। इनमें से साक्षर व कमजोर छात्र पैदल सैनिक बन गये और मेधावी आगे निकल कर सब क्षेत्रों में फैल गये, लेकिन मौन रहे और ठीक समय का इंतज़ार करते रहे । जैसे ही 2013 में कमजोर कड़ी दिखी, उन्होंने खादी व गांधी टोपी पहने, सोचने समझने में असमर्थ अन्ना हजारे को आगे कर दिया और पीछे लग गये केजरीवाल, योगेन्द्र यादव, आनंद कुमार, राजमोहन गांधी और प्रशांत भूषण वग़ैरह जैसे तमाम स्वच्छ सामाजिक छवि के लोग। सैकड़ों युवा अपनी अच्छी अच्छी नौकरियों को छोड़कर इस 'दूसरी क्रांति' में जुट गये। मंच के सामने हजारों साधारण स्वयंसेवक बैठते थे और मंच पर बैठे इन मूर्ख नेताओं को यह गुमान हो गया कि यह उनकी लोकप्रियता है। मंच पर एक भी स्वयंसेवक नहीं आया, वे सब नेपथ्य में रहे। जब बटन दबाया गया, तो अन्ना हजारे अपने गांव पहुँच गये और दिल्ली की लंगड़ी लूली सरकार व अधूरे राज्य की सत्ता पर समझौता हो गया। 2014 में पहले से ही तैयार सारी मीडिया, न्यायपालिका, नौकरशाही, टैक्नोक्रेट्स और बूथ पर खड़ा प्रहरी सब एक दिशा में जुट गये और कांग्रेस का स्वाभाविक व ऐतिहासिक पतन हुआ।

अभी भी मृत्युशैय्या पर अंतिम साँसें गिन रहा बीमार मुख्य विपक्षी दल इस भ्रम में है कि जनता बदलेगी और वे केंद्र में सत्तासीन हो जायेंगे। जनता तो बदलेगी पर बूथ पर वोट कोई दूसरा लूट ले जायेगा। बूथ पर कोई दस घंटे बैठना वाला कार्यकर्ता अब बचा ही नहीं है, नहीं तो बूथ पर बैठा कांग्रेसी ही बिक जायेगा, यदि जीत भी गये तो विजयी विधायक या सांसद ही बिक जायेगा। निरपेक्ष तथा निष्पक्ष विवेचन कांग्रेस को करना नहीं है तो हर चुनाव में यही हाल होगा, चालीस पचास लोग निजी काम के दम पर जीतते रहेंगें और भारत में लोकतंत्र का भ्रम बना रहेगा।

आंखी दास जैसे लाखों स्वयंसेवक हमेशा अलग अलग स्थानों पर जैसे अदालतों, मीडिया, नौकरशाही, प्राइवेट कंपनियों, स्कूलों विश्वविद्यालयों तथा चुनाव आयोग में बने रहेंगे और एकाध बार यदि चुनावों में भारी जनरोष के कारण हार भी गये तो अगली बार वे फिर से आ जायेंगे।

अब घबरा कर पूछा जायेगा कि रास्ता क्या है? रास्ता बताऊँगा तो उस पर चलना इनके बस की बात नहीं है। जब लगेगा कि सचमुच की इच्छा है तो फ़ेसबुक पर नहीं बताऊँगा, इसलिए नहीं कि कुछ गोपनीय है, बल्कि इसलिए कि वह करने की चीज़ है और पीढ़ियों को खपाने की बात है, जो सिर्फ और सिर्फ उस भुला दिये गये बूढ़े गांधी के रास्ते पर चल कर ही होगा, जिसकी हत्या किसी एक विचार ने की, पर वैचारिक हत्या उसके ही घोषित वैचारिक परिवार वालों ने कर दी थी। ❑

चर्चा में

पर्यावरण प्रभाव आकलन अधिसूचना 2020

1984 में मध्य प्रदेश के भोपाल में हुई गैस त्रासदी के बाद देश भर में जोर-शोर से ये मांग उठने लगी की भारत पर्यावरण सुरक्षा को लेकर एक कानून बनाए.पर्यावरण पर स्टॉकहोम डेक्लरेशन (1972) पर हस्ताक्षर करने के बाद भारत ने जल नियंत्रण (1974) और वायु प्रदूषण (1981) के संबंध में तो कानून बना लिया था, लेकिन पर्यावरण के संबंध में अब भी मजबूत कानून का इंतजार था.भोपाल गैस त्रासदी जैसी भयावह घटना के बाद ये संभव हो पाया और देश ने 1986 में पर्यावरण संरक्षण के लिए एक कानून बनाया. इसी कानून के तहत साल 1994 में पर्यावरण प्रभाव आकलन (ईआईए) नियमों का जन्म हुआ.इसके जरिये कई प्रावधान निर्धारित किए गए, ताकि प्राकृतिक संसाधनों के इस्तेमाल और पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों की निगरानी की जा सके.ईआईए अधिसूचना आने के बाद विभिन्न परियोजनाओं को इससे गुजरना होता था और इसके तहत सभी शर्तों का पालन किए जाने की स्थिति में ही परियोजनाओं को कार्य शुरू करने की मंजूरी दी जाती थी. आगे चलकर इसमें कुछ बदलाव किए गए और साल 2006 में एक नई अधिसूचना जारी की गई, जिसे हम ईआईए अधिसूचना, 2006 के नाम से जानते हैं.

अब केन्द्र सरकार इसमें और बदलाव करना चाहती है, जिसके लिए एक नई अधिसूचना का ड्राफ्ट जारी किया गया है.वैसे तो ईआईए अधिसूचना की परिकल्पना पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा के लिए की गई थी, लेकिन कार्यकर्ताओं और विशेषज्ञों की दलील है कि सरकार इसके जरिये कई पर्यावरण विरोधी गतिविधियों को कानूनी मान्यता प्रदान कर रही है.उदाहरण के तौर पर इस अधिसूचना का एक सबसे महत्वपूर्ण भाग ये है कि परियोजनाओं को मंजूरी लेने से पहले इसकी वजह से पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव का आकलन करके रिपोर्ट पेश करनी होती है. लेकिन बार-बार ऐसा होता आया है और अब यह एक आम चलन बनने जैसा प्रतीत होता है कि कंपनियां इसे लेकर फर्जी रिपोर्ट बनवा लेती हैं और उत्तरदायी ठहराए जाने से बच निकलती हैं.सरकारी विभागों की क्षमता में भी काफी कमी है, जिसके कारण वे इन नियमों का अनुपालन कराने में असफल रहते हैं. इसके अलावा साल दर साल इस अधिसूचना में संशोधन करके विभिन्न परियोजनाओं या उद्योगों को इसके दायरे से बाहर किया जाता रहा है. हालांकि एक दूसरा धड़ा भी है, जो ये कहता है कि ऐसे नियमों की वजह से उद्योग लगाने में देरी होती है और लालफीताशाही बढ़ती जाती है.

2014 के लोकसभा चुनाव में ये एक बड़ा मुद्दा बना था कि पर्यावरण मंत्रालय में बहुत सारी परियोजनाएं अटकी पड़ी हैं और उन्हें पर्यावरण को बचाने के नाम पर मंजूरी नहीं दी जा रही है.इसे लेकर उस समय प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार नरेंद्र मोदी ने कांग्रेस नेतृत्व वाली संप्रग सरकार पर हमला करते हुए कहा था कि पर्यावरण मंत्रालय से तब तक फाइल नहीं हिलती है, जब तक कि 'जयंती टैक्स' नहीं दे दिया जाता है.तत्कालीन कांग्रेस नेता जयंती नटराजन उस समय पर्यावरण मंत्री थीं और दिसंबर 2013 में उन्होंने पद से इस्तीफा दे दिया था.मोदी ने कहा था कि उनकी सरकार आते ही इन परियोजनाओं को तेजी से मंजूरी दी जाएगी. बाजारोन्मुखी और किसी कीमत पर तथाकथित विकास चाहने वाले लोगों का तर्क है कि बेवजह पर्यावरण के नाम पर परियोजनाओं को लंबित रखना सही नहीं है.वहीं विशेषज्ञों का कहना है कोई परियोजना इसलिए नहीं रोकी जाती कि लोग या विभाग विकास की राह में रोड़ा डालना चाहते हैं, बल्कि उसे इसलिए रोका जाता है क्योंकि वे पर्यावरण संबंधी जरूरी शर्तों को पूरा नहीं कर पाते हैं.

किसी भी संवैधानिक लोकतंत्र में सरकार को ऐसे कानूनों पर जनता की राय लेनी होती है, जिससे बड़ी संख्या में लोगों के प्रभावित होने की संभावना होती है और कानून के प्रावधानों में उन्हें भागीदार बनाना होना होता है.पर्यावरण को लेकर ये नई अधिसूचना लोगों के इस अधिकार को छीनती है और पर्यावरण को बचाने में लोगों की भूमिका का दायरा बहुत कम करती है. वहीं दूसरी तरफ इसमें सरकार की फैसले लेने की विवेकाधीन शक्तियों को और बढ़ाने का प्रस्ताव रखा गया है.राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़ी परियोजनाओं को वैसे ही रणनीतिक माना जाता है, हालांकि सरकार अब इस अधिसूचना के जरिये अन्य परियोजनाओं के लिए भी 'रणनीतिक' शब्द को परिभाषित कर रही है.अधिसूचना को लेकर 2020 के मसौदे के मुताबिक ऐसी परियोजनाओं के बारे में कोई भी जानकारी सार्वजनिक नहीं की जाएगी, जो इस श्रेणी में आती हैं.इसका खतरा ये है कि अब कई सारी परियोजनाओं के लिए रास्ता खुल जाएगा. उद्योग ऐसी परियोजनाओं को 'रणनीतिक' बताकर आसानी से मंजूरी ले लेंगे और उन्हें इसकी वजह भी बताने की जरूरत नहीं पड़ेगी.इसके अलावा नई अधिसूचना विभिन्न परियोजनाओं की एक बहुत लंबी सूची पेश करती है, जिसे जनता के साथ विचार-विमर्श के दायरे से बाहर रखा गया है.उदाहरण के तौर पर देश की सीमा पर स्थित क्षेत्रों में रोड या पाइपलाइन जैसी परियोजनाओं के लिए सार्वजनिक सुनवाई की जरूरत नहीं होगी.विभिन्न देशों की सीमा से 100 किमी. की हवाई दूरी वाले क्षेत्र को 'बॉर्डर क्षेत्र' के रूप में परिभाषित किया गया है. इसके कारण उत्तर-पूर्व का अच्छा खासा क्षेत्र इस परिभाषा के दायरे में आ जाएगा, जहां पर देश की सबसे घनी जैव विविधता है.इसके अलावा सभी अंतरदेशीय जलमार्ग परियोजनाओं और राष्ट्रीय राजमार्गों के चौड़ीकरण को ईआईए अधिसूचना के तहत मंजूरी लेने के दायरे से बाहर रखा गया है.

इन दोनों परियोजनाओं को केंद्रीय मंत्री नितिन गडकरी द्वारा काफी बढ़ावा दिया गया है. इसमें उन सड़कों को भी शामिल किया गया है, जो जंगलों और नदियों से गुजरती हैं. खास बात ये है कि ये परियोजनाएं अभी भी सवालों के घेरे में हैं. अंतरदेशीय जलमार्ग से जुड़े कानून को बनाते वक्त कई स्तरों पर मंत्रालयों, विशेषज्ञों और यहां तक कि राज्य सरकारों को भी दरकिनार किया गया था. इसे लेकर भारत सरकार के विभागों ने ही चिंता जाहिर की थी कि इस तरह का निर्माण पर्यावरण और भारत सरकार के खजाने के लिए सही नहीं है.ईआईए अधिसूचना, 2020 में एक सबसे चिंताजनक और पर्यावरण विरोधी प्रावधान ये शामिल किया

गया है कि अब उन कंपनियों या उद्योगों को भी क्लीयरेंस प्राप्त करने का मौका दिया जाएगा, जो इससे पहले पर्यावरण नियमों का उल्लंघन करती आ रही हैं.

इससे पहले मोदी सरकार मार्च 2017 में भी इस तरह की मंजूरी देने के लिए अधिसूचना लेकर आई थी और उसी को यहां दोहराया जा रहा है. प्रावधानों के मुताबिक ईआईए अधिसूचना लागू होने के बाद यदि किसी कंपनी ने पर्यावरण मंजूरी नहीं ली है, तो वह 2,000-10,000 रुपये प्रतिदिन के आधार पर फाइन जमा कर के मंजूरी ले सकती है.अब जरा इस मामूली फाइन की तुलना प्रतिदिन उल्लंघन करने वाले किसी केमिकल उद्योग या कोयला खनन या अवैध बालू खनन से कीजिए. एक दिन में एक ट्रक अवैध कोयला या बालू की कीमत क्या होगी और सरकार एक दिन का कितना हर्जाना वसूल रही है.खास बात ये है कि सर्वोच्च न्यायालय ने पर्यावरण के मामलों में इस तरह के प्रावधान को पहले ही खारिज कर दिया है.एक अप्रैल को अपने एक फैसले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा था कि 'पोस्ट फैक्टो पर्यावरण मंजूरी' कानून के खिलाफ है. पीठ ने कहा था कि यह एहतियाती सिद्धांत के साथ-साथ सतत विकास की आवश्यकता के भी खिलाफ है.इस अधिसूचना के मसौदे में ये कहा गया है कि सरकार इस तरह के उल्लंघनों का संज्ञान लेगी. हालांकि ऐसे पर्यावरणीय उल्लंघन या तो सरकार या फिर खुद कंपनी द्वारा ही रिपोर्ट किए जा सकते हैं. यहां पर जनता द्वारा किसी भी उल्लंघन की शिकायत करने का कोई विकल्प नहीं है.ये अपने आप में कितना हास्यास्पद है कि सरकार उम्मीद कर रही है कि पर्यावरण का उल्लंघन करने वाली कंपनी खुद सरकार को ये बताएगी कि वह कानून तोड़ रही है.सरकार के ये सारे प्रावधान पर्यावरण संरक्षण के लिए बने मूल कानून के साथ ही गंभीर विरोधाभास की स्थिति उत्पन्न करते हैं. सरकार व्यापार सुगमता के नाम पर पर्यावरण को गंभीर खतरा पहुंचाने का रास्ता खोल रही है और हमेशा से ही पर्यावरण को बचाने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले स्थानीय नागरिकों को ही फैसले लेने के दायरे से बाहर कर रही है.

- द वायर

सर्व सेवा संघ के महामंत्री एवं मंत्रियों की नियुक्ति

सर्व सेवा संघ (अ. भा. सर्वोदय मंडल) के अध्यक्ष महादेव विद्रोही ने दिनांक 18 अगस्त 2020 से **एडवोकेट लक्ष्मण सिंह,** फर्रूखाबाद (उ. प्र.) को सर्व सेवा संघ का महामंत्री नियुक्त किया है। लक्ष्मण सिंह उत्तर प्रदेश सर्वोदय मंडल के उपाध्यक्ष हैं। उन्होंने सार्वजनिक महत्व के अनेक मुद्दों जैसे भूमिहीनों में भूमि का आवंटन, गन्ना किसानों की बकाया राशि का भुगतान, विधवाओं एवं विकलांगों को पेंशन, गौशाला संरक्षण, फर्रूखाबाद में विद्युत शवदाह गृह की स्थापना, खादी भंडार को नीलामी से बचाने जैसे अनेक मुद्दों पर सफल आन्दोलन किये हैं।

प्रो. आनंद किशोर (सीतामढ़ी, बिहार) तथा चंद्रकांत चौधरी (भुसावल, महाराष्ट्र) को सर्व सेवा संघ का मंत्री नियुक्त किया गया है। प्रो. आनंद किशोर डॉ. भीमराव अंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय के प्राध्यापक रहे हैं। वे पिछले अनेक दशकों से पत्रकारिता एवं सार्वजनिक जीवन में सक्रिय हैं। उन्होंने जेपी आन्दोलन में सक्रियता के साथ भाग लिया। उन्होंने किसानों के मुद्दों पर कई आन्दोलन एवं सत्याग्रह किये हैं। वे पीपुल्स युनियन फॉर सिविल लिबर्टीज के बिहार के उपाध्यक्ष हैं। अ. भा. किसान संघर्ष समन्वय समिति तथा संयुक्त किसान संघर्ष मोर्चा में भी वे अग्रणी भूमिका निभा रहे हैं।

चंद्रकांत चौधरी महाराष्ट्र सर्वोदय मंडल के महामंत्री हैं। उन्होंने लोकनायक जयप्रकाश नारायण द्वारा स्थापित छात्र युवा संघर्ष वाहिनी से अपने सार्वजनिक जीवन की शुरुआत की। उन्होंने समाज के वंचित एवं उपेक्षित लोगों को न्याय और उनका हक दिलाने के लिए अनेक महत्वपूर्ण लड़ाइयां लड़ी हैं। झुग्गी झोपड़ी में रहने वाले लोगों की समस्याओं, छोटे बच्चों की शिक्षा, रेलवे के कुलियों और वेंडरों के संगठन, रिक्शा चालकों की यूनियन, विस्थापितों के पुनर्वास जैसे अनेक महत्वपूर्ण संघर्षों में वे अग्रणी रहे हैं। वे सुश्री मेधा पाटकर के नेतृत्व में जन-आन्दोलनों के राष्ट्रीय समन्वय की समिति में भी अपनी प्रमुख भूमिका निभा रहे हैं।

-प्रशांत गुजर
कार्यालय मंत्री

भारत 'चुनी हुई तानाशाही' की ओर-जस्टिस शाह

दिल्ली हाईकोर्ट के पूर्व मुख्य न्यायाधीश जस्टिस ए.पी.शाह ने कहा है कि देश चुनी हुई तानाशाही की ओर बढ़ रहा है। उन्होंने कहा कि इस कोविड-19 के दौर में संसद एक 'भूतहे शहर' में तब्दील हो गयी है, न्यायपालिका ने अपनी भूमिका को त्याग दिया है, जवाबदेही की पूरी प्रणाली को कमज़ोर कर दिया गया है और केंद्रीय कार्यपालिका इतनी ताक़तवर हो गयी है कि जो चाहे, करती जा रही है। जस्टिस शाह सिविल सोसाइटी समूहों द्वारा आयोजित एक जन संसद वेबिनार को संबोधित कर रहे थे। उन्होंने कहा कि अतीत में 1962 और 1971 के युद्ध-संकट के समय भी संसद चलती रही। यहाँ तक कि 2001 में संसद पर हमले के दूसरे दिन भी बैठक हुई। दूसरे देशों में भी इस दौरान संसद चलती रही, चाहे बैठकें वर्चुअल तरीके से ही हुई हों, लेकिन कोशिश ये रही कि विधायी कार्य चलता रहे। उन्होंने इमरजेंसी से तुलना करते हुए कहा कि जम्मू-कश्मीर के विभाजन, सीएए और इलेक्टोरल बांड जैसे अहम मसलों को नज़रअंदाज़ करने से साफ है कि सुप्रीम कोर्ट ने न्यायकर्ता की अपनी भूमिका न निभाकर सरकार को मनमर्जी करने की छूट दे दी है। उन्होंने चेताया कि महामारी के नाम पर जवाबदेही की व्यवस्था को कमजोर किया जाना एक खतरनाक ट्रेंड है, जो बताता है कि भारत एक इलेक्टेड ऑटोक्रेसी (चुने हुए लोगों की तानाशाही) की ओर बढ़ रहा है। इस मौके पर प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता अरुणा रॉय ने कहा कि सरकार ने महामारी की आपदा का इस्तेमाल अपनी नीतियों को बेहद अलोकतांत्रिक तरीके से लागू करने के लिए किया है। उन्होंने कहा कि श्रम कानूनों से लेकर पर्यावरण संरक्षण से जुड़े नियमों को लागू करना और बिना संसद की सहमति के नयी शिक्षा नीति लाना इसकी बानगी है।

-मीडिया विजिल

कोरोना महामारी और सत्ता का इंद्रजाल

❑ अरविन्द अंजुम

महामारियों ने इतिहास में हमेशा इंसानों की जिंदगियों को तबाह और समाज के ताने-बाने को तहस-नहस किया है।यह वक्त होता ही ऐसा है, जब समाज की अच्छी-बुरी सभी प्रवृत्तियां सतह पर आ जाती हैं और अपने अपने स्वभाव के लिहाज से किरदार भी अदा करती हैं। कोरोना वायरस के दौर में सड़कों पर घर लौटते मजदूरों को सहायता पहुंचाने के लिए एक बड़ी जमात सहायता के लिए जोखिम लेकर सामने आई, तो उनके सामने मुश्किलें खड़ी करने के लिए सरकारी महकमे संवेदनशीलता की धज्जियां उड़ा रहे थे।

समाज जब भी संकटग्रस्त होता है, तब सत्ता, चाहे राजनीतिक हो या सामाजिक, उस पर अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए उसे अवसर में बदल देती है। वह लुभावना व रंगीन इंद्रजाल बुनती है।भारत में भी शुरुआत से ही इस मामले में कई तरह के हथकंडे अपनाए गए। वायरस की ब्रांडिंग, इलाज के हास्यास्पद टोटकों से लेकर वैक्सीन के दावों के बीच का यह सुहाना सफर अत्यंत निराशाजनक, दयनीय और उतना ही डरावना है।

महामारी के इस दौर के रुख को पीछे की ओर मोड़ कर ठीक 500 बरस पहले पहुंचकर देखें, तो एकबारगी अहसास होगा कि दुनिया वहीं की वहीं ठहरी हुई है ,हालांकि हू-ब-हू ऐसा होता नहीं है।आज से ठीक 500 बरस पहले मेक्सिको में चेचक की महामारी का पहली बार प्रकोप हुआ, तो यूकाटन प्रायद्वीप में मायाओं ने इसके लिए तीन दुष्ट देवताओं को जिम्मेदार ठहराया, जो रात में उड़कर एक जगह से दूसरी जगह इसे फैला रहे थे। एजटेक इसके लिए अन्य 2 देवताओं को और गोरों के काले जादू को दोषी ठहराते थे।

इस रोग के नियंत्रण के लिए पुरोहितों और वैद्यों से सलाह मशविरा किया गया।उन्होंने प्रार्थनाएं करने, शीतल जल से नहाने, बदन पर बिटुमिन मलने और भौंरों को मसलकर घाव पर चिपकाने की सलाह दी। पर इनसे न कोई फायदा होना था और न हुआ। हजारों की संख्या में सड़ते हुए शव पड़े थे और किसी के पास इतना साहस नहीं था कि उन शवों को दफनाये। कुछ ही दिनों बाद अधिकारियों ने आदेश दे दिया कि मकानों को शवों के ढेर पर गिरा दिया जाए।असंख्य परिवार तबाह हो गए,कुछ बस्तियों की तो आधी जनसंख्या मौत के हवाले हो गयी। इस महामारी की शुरुआत भी बड़े अजीबोगरीब तरीके से हुई। मार्च 1520 में जहाजों का एक छोटा बेड़ा क्यूबा के द्वीप से मेक्सिको की ओर रवाना हुआ।इन जहाजों में घोड़ों के साथ 900 स्पेनी सैनिक, तोपें और कुछ अफ्रीकी गुलाम सफर कर रहे थे। इनमें से एक गुलाम फ्रांसिस्को दि एगिया अपनी देह पर एक घातक जैविक टाइम बम लादे हुए था। उसको यह पता भी नहीं था कि उसकी अरबों कोशिकाओं के बीच एक खतरनाक विषाणु का लालन पालन हो रहा है।

मेक्सिको में उतरने के साथ ही विषाणु ने उसके पूरे शरीर को अपने कब्जे में लेकर रंग दिखाना शुरू कर दिया और त्वचा पर असंख्य फुंसियों के मार्फत फूट पड़ा। बुखार से तप रहे फ्रांसिस्को को टेम्पोआलान नगर स्थित एक स्थानीय अमेरिकी परिवार के घर पर आराम के लिए ले जाया गया। उसने उस परिवार के सदस्यों को संक्रमित कर दिया, जिन्होंने अपने पड़ोसियों तक इस त्रासदी को पहुंचाया। विषाणु ने दस दिन के अंदर टेंपोआलान को एक मरघट में बदल कर रख दिया और अन्य शरणार्थियों ने इसे आसपास के नगरों तक फैला दिया।यही विषाणु धीरे-धीरे पूरी दुनिया में फैला और करोड़ों लोग इसकी चपेट में आ गए।

पाँच सदी पहले के इस विवरण से लगता है कि हम कहीं से भी मानसिक धरातल पर छलांग नहीं लगा पाए हैं, जबकि इस दरमियान विज्ञान और भौतिक दृष्टि से हमारे जीवन में अभूतपूर्व बदलाव आए हैं। मायाओं व एजटेक की तरह आज भी हम गुनहगार तलाश रहे हैं। कोरोना काल के आगाज के साथ ही खलनायक ढूंढा जाने लगा था और सभी अपनी अपनी सुविधानुसार इसकी पहचान कर रहे थे। भारत में तबलीगी जमात को पहला शिकार बनाया गया। इसी तरह से कोरोना वायरस से बचाव के लिए गोमूत्र-पान, गो कोरोना गो पार्टी,बदन पर गोबर लेपन ,हनुमान चालीसा पाठ एवं 9 लड्डू-9 लौंग से कोरोना माई का पूजन आदि ने देश को पीछे धकेलकर यूकाटन प्रायद्वीप के अंधकार के बीच ला पटका।

लेकिन ये सारे टोटके धरे के धरे रह गए।कोरोना का प्रसार बढ़ता ही जा रहा है।संक्रमितों और मौतों के आंकड़े सभी को डरा रहे हैं, हालांकि यह विगत शताब्दियों के मुकाबले काफी कम है।पर हमारी तरक्की तो उससे कहीं ज्यादा है। रोगों या महामारियों पर नियंत्रण और चिकित्सा के सामर्थ्य में भी विस्मयकारी तरक्की हुई है। चेचक के टीकाकरण का वैश्विक अभियान इस कदर कामयाब रहा कि 1979 में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने घोषणा कर दी कि मानवता की जीत हुई है और चेचक का पूरी तरह उन्मूलन कर दिया गया है।यह पहली ऐसी महामारी है, जिसे पृथ्वी से पूरी तरह निर्मूल कर देने में मनुष्य कामयाब रहा। 1967 में चेचक ने 15 करोड़ लोगों को गिरफ्त में लिया हुआ था और उनमें से 20 लाख लोगों की जान चली गई, लेकिन 2014 में एक भी व्यक्ति को न तो चेचक का संक्रमण हुआ और न ही उसमें कोई जान गई। इस महामारी पर जीत इतनी मुकम्मल थी कि विश्व स्वास्थ संगठन ने टीके लगाना भी बंद कर दिया। इस तरह 1520 से शुरू हुआ जानलेवा महामारी का सफर 2014 तक आते आते चिकित्सा शास्त्र के सामने बेबस हो गया।

बीमारी के साथ हजारों सालों से अभिन्न रूप से चले आ रहे टोटके शायद अगली शताब्दियों में भी कायम रहें, पर कोरोना महामारी से मुक्ति के लिए लोगों की टकटकी अब किसी ईश्वर के पूजनीय स्थान की ओर नहीं, बल्कि ऑक्सफोर्ड समेत दो दर्जन से ज्यादा स्थानों पर हो रहे शोधों पर लगी हुई है।

बीतते वक्त के साथ चिकित्सक एवं वैज्ञानिक बेहतर ज्ञान संचित कर रहे हैं, जिसका इस्तेमाल वे अधिक कारगर दवाओं और चिकित्सा शास्त्र को गढ़ने में करते हैं। हम उम्मीद कर सकते हैं कि आगामी दशकों में वैज्ञानिक ज्यादा बेहतर तरीके से रोगाणुओं से निपट सकेंगे।टोटकों का संसार या सत्ता का इंद्रजाल, चाहे जितना रंगीन, मनमोहक और रहस्यमय क्यों न हो, पर ज्ञान और अनुभव के व्यापक होते दायरे के सामने वे निरंतर कमजोर पड़ते जा रहे हैं और एक दिन दम तोड़ देंगे। मानवता उसी अभीष्ट के इंतजार में है। ❑

नेपाल-भारत सम्बंधों में दरार

❑ पंचम भाई

हाल ही में नेपाल ने भारत में निर्माणाधीन एक सड़क पर आपत्ति जताई है। यह सड़क उत्तराखंड में धारचूला को लिपुलेख से जोड़ती है, जो करीब 80 किलोमीटर लंबी है। दरअसल यह सड़क भारतीय तीर्थयात्रियों के लिए कैलास मानसरोवर यात्रा के समय को कम करने के साथ साथ, उनकी यात्रा को अधिक सुगम बनाएगी। नेपाल का कहना है कि वह भू-भाग नेपाल का हिस्सा है। अपने हालिया वक्तव्य में नेपाली विदेश मंत्रालय ने भारत को चेतावनी भी दी है कि भारत इस जमीन को वापस करे और भविष्य में ऐसा करने से बचे।

पिछले वर्ष भी नेपाल ने उत्तराखंड में स्थित कालापानी इलाके को लेकर विवाद का मुद्दा छेड़ दिया था। दोनों ही अवसरों पर भारत ने नेपाल की आपत्तियों का खंडन किया है। भारतीय सेना प्रमुख ने चीन का नाम लिए बिना नेपाल को बाहरी ताकतों के बहकावे में न आने की मित्रवत सलाह भी दी। हालांकि यह पहला अवसर है, जब नेपाल ने भारत को खुलेआम धमकी दी है और आधिकारिक तौर पर भारत के खिलाफ सत्तारूढ़ नेपाल कम्युनिस्ट पार्टी ने आंदोलन किया है। भारत कहता रहा है कि वह उचित समय पर विदेश सचिव स्तर की बातचीत के सहारे मुद्दे का कूटनीतिक हल निकालेगा, लेकिन यह नेपाल को स्वीकार्य नहीं है।

इन हालात के बीच नेपाल ने बिना किसी विशेष सर्वेक्षण के आनन-फानन में एक नया राजनीतिक नक्शा जारी किया है, जिसमें भारत की सार्वभौमिक सीमा के भू-भाग को अवैधानिक तौर पर अपना दर्शाया है। साथ ही प्रधानमंत्री के. पी. शर्मा ओली ने नेपाली सेना को नेपाल भारत सीमा पर चैकसी बढ़ाने का आदेश भी दिया है। ओली द्वारा उठाए गए इन कदमों से ऐसा झलक रहा है कि इस मुद्दे को सुलझाने से अधिक इससे राजनीतिक फायदा उठाने का प्रयास किया जा रहा है। हालांकि सरकार द्वारा जल्दबाजी में उठाए जा रहे कदमों के खिलाफ विपक्षी दल नेपाली कांग्रेस पार्टी और अन्य मधेसी पार्टियों ने सरकार को आड़े हाथों लिया है। भारत और नेपाल के संबंध दक्षिण एशिया में अन्य देशों की भांति नहीं हैं। यहां दोनों देशों के बीच खुली सीमा है, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक तौर पर दोनों देशों के बीच गूढ़ संबंध कायम हैं। नेपाल में प्रजातंत्र की स्थापना करने में भारत ने महत्वपूर्ण शांतिदूत की भूमिका निभाई थी। ऐसे में नेपाल द्वारा भारत का विरोध इन तीन महत्वपूर्ण बिन्दुओं की ओर इशारा करता है।

बीते पांच वर्षों में ओली ने भारत विरोध के सहारे ही नेपाल में अपनी राजनीतिक साख मजबूत की है। एक तरह से वहां भारत विरोध राष्ट्रीय विमर्श का अभिन्न अंग बन गया है। वर्ष 2018 के संसदीय चुनावों में भारत विरोध के दम पर ही नेपाल कम्युनिस्ट पार्टी भारी मतों से विजयी हुई थी, लेकिन बीते कुछ महीनों में पार्टी आलाकमान ने ओली के नेतृत्व पर सवाल खडे किए हैं। विशेष तौर पर कारोना महामारी की रोकथाम और अप्रवासी मजदूरों को तात्कालिक सहायता पहुंचाने को लेकर। ऐसे में भारत के प्रति विषवमन ओली के लिए ध्यान भटकाने और अपना वजूद बचाने का जरिया है।

नेपाल की मौजूदा कम्युनिस्ट सरकार अपने ही देश के मधेसी लोगों पर लगातार अत्याचार करती रही है। चूंकि भारत के साथ नेपाल की सीमा खुली है, लिहाजा मधेसी आंदोलनों का असर भारतीय सीमा पर भी रहा है। इसके चलते भारत नेपाल में मधेसियों के प्रजातांत्रिक अधिकारों की वकालत करता रहा है, जो नेपाल को नागवार गुजरता है। इधर ओली द्वारा मधेसी जनता को भारत के प्रति उकसाने का भरसक प्रयास विफल ही रहा। अगर ऐसा होता है तो पहाड़ी राजनेताओं का तराई क्षेत्र में वर्चस्व स्थापित हो सकेगा और मधेसियों की आवाज दबाने में कामयाबी मिल सकती है। वर्ष 2015 में नए संविधान को लेकर मधेसी जनता ने तीन महीने तक नेपाल सरकार का विरोध किया था, जिससे भारत से आने वाले सामान पर असर पडा था। मधेसी आंदोलन में भी नेपाल ने भारत की भूमिका पर अंगुली उठाई थी, जो सरासर गलत था।

पिछले पांच वर्षों में कम्युनिस्ट सरकार ने चीन के साथ कई समझौते किए हैं, जिनमें सैन्य करार भी शामिल हैं। इस समझौते के बावजूद चीन यह जानता है कि भारत के रहते नेपाल में वह श्रीलंका या पाकिस्तान जैसी मनमानी नहीं कर सकता। इसलिए यह जरूरी है कि कम्युनिस्ट सरकार को माओवादी विचारधारा से जोड़कर, भारत के विरुद्ध खड़ा किया जा सके। इससे न केवल चीन को नेपाल में अपनी साख मजबूत करने में मदद मिलेगी, बल्कि नेपाल में रह रहे तेरह हजार से अधिक तिब्बती शरणार्थियों के दमन का रास्ता भी तैयार होगा। आश्चर्य की बात है कि वर्ष 2015 में चीन ने भारत के साथ करार में कालापानी और लिपुलेख को भारत का हिस्सा माना था। चूंकि चीन चाहता है कि भारत-नेपाल संबंधों में दरार पड़े, लिहाजा वह नेपाल को अपनी ढाल बना रहा है।

वहीं नेपाली नेताओं का भारत विरोधी राग अपने फायदे के लिए ही है, क्योंकि चीन द्वारा नेपान के माउंट एवरेस्ट को अपना बताने पर कोई विरोध या वक्तव्य जारी नहीं हुआ। ऐसे में यह कहना गलत नहीं है कि नेपाल की कम्युनिस्ट सरकार अपने राजनीतिक फायदे के लिए चीन से प्रभावित होकर भारत के साथ विवाद की स्थिति बना रही है। हालांकि ओली सरकार यह भूल रही है कि भारत-नेपाल के संबंध कोई नए नहीं हैं, बल्कि दोनों देशों के बीच सदियों से चले आ रहे अच्छे संबंध समन्वय और त्याग पर आधारित है। ओली सरकार सीमा विवाद जैसे मुद्दे के जरिये कुछ समय के लिए भले ही संबंधों को क्षति पहुंचाये, परन्तु भौगोलिक और सांस्कृतिक तौर पर वह भारत को दूर नहीं रख सकती। देखा जाए तो विदेशी व्यापार के लिए नेपाल की भारत पर निर्भरता एक सत्य है और ऐसे में कोई भी विवाद नेपाल के लिए ही नुकसानदेह साबित होगा। उसे इन पहलुओं पर विचार करके ही भविष्य के लिए कोई रणनीति बनानी चाहिए। ❑

14 सितंबर : हिन्दी दिवस पर

महात्मा गांधी और हिन्दी : सौ साल पहले

❑ डॉ. रवीन्द्र कुमार

हमारी राष्ट्रभाषा के क्या लक्षण होने चाहिए? 1–वह भाषा सरकारी नौकरों के लिए सरल होनी चाहिए। 2–उस भाषा द्वारा भारत का आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक कार्य हो सकना चाहिए। 3–उस भाषा को भारत के अधिकांश जन बोलते हों। 4–वह भाषा राष्ट्र के लिए सरल हो। 5–उस भाषा का विचार करते समय क्षणिक अथवा कुछ समय तक रहने वाली स्थिति पर बल न दिया जाय। अंग्रेजी भाषा में इनमें से एक भी लक्षण नहीं है। गम्भीरता से विचार करने पर हम देखेंगे कि आज भी शासकीय सेवकों के लिए वह भाषा सरल नहीं है। ये पाँचों लक्षण रखने वाली हिन्दी की प्रतिस्पर्धा करने वाली अन्य कोई भाषा भारत में नहीं है।

–महात्मा गाँधी

वर्तमान पीढ़ी में कदाचित् ही कोई जानता होगा कि गाँधीजी ने ये विचार 20 अक्टूबर, 1917 को भरूच में आयोजित द्वितीय गुजरात शिक्षा परिषद की अध्यक्षता करते हुए अपने सम्बोधन में व्यक्त किए थे। लगभग एक सौ तीन वर्ष पूर्व व्यक्त उनके विचारों से हम आज भी यह भली-भाँति समझ सकते हैं कि राष्ट्रभाषा के रूप में भारत के लिए हिन्दी की महत्ता को गाँधीजी कितना पहचानते एवं स्वीकार करते थे।

1916 में लखनऊ में आयोजित काँग्रेस के एक ऐतिहासिक अधिवेशन को भी गाँधीजी ने हिन्दी में सम्बोधित किया था और उसी अधिवेशन के समय उन्होंने यह तय किया था कि वे भविष्य में काँग्रेस के प्रत्येक अधिवेशन को (जिस में भी वे भगीदारी करेंगे) हिन्दी में ही सम्बोधित करेंगे। उनकी उस प्रतिबद्धता का अन्य समकालीनों, विशेषकर अहिन्दीभाषी क्षेत्रों से आने वाले राष्ट्रीय नेताओं पर कितना प्रभाव पड़ा, परिणामस्वरूप उसने राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के स्वर्णकाल –गाँधीयुग में हिन्दी के भारत भर में उत्थान, प्रचार-प्रसार और राष्ट्रव्यापी बनने में कितना बड़ा योगदान दिया, वर्तमान पीढ़ी को उसे जानना चाहिए। हिन्दी प्रसार-प्रचार का कार्य राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन का एक भाग बन गया था। स्वाधीनता आन्दोलन के गाँधीयुग में वह स्वाधीनता सेनानियों की गतिविधिओं के साथ जुड़ गया था।

मार्च, 1918 में गाँधीजी ने इन्दौर में आयोजित हिन्दी साहित्य सम्मलेन की अध्यक्षता की। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाए जाने का दृढ़तापूर्वक आह्वान किया। देश भर में हिन्दी के प्रचार-प्रसार हेतु एक ऐतिहासिक पहल की। उन्होंने कुछ लोगों का चयन किया, जो देशभर में जाकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार कार्य को आगे बढ़ाएँ। चयनित लोगों

में उनके सबसे छोटे पुत्र देवदास गाँधी भी सम्मिलित थे और उन लोगों ने अपना कार्य द्रविड़ क्षेत्र, आज के तमिलनाडु से प्रारम्भ किया।

ये कुछ उदहारण मात्र हैं, गाँधीजी के भारत के स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय रूप में जुड़ाव के समय के, और कुछ प्रारम्भिक वर्षों के, जब उन्होंने देश के लोगों को एकबद्ध करने और उन्हें विशुद्ध मानवता केन्द्रित राष्ट्रवाद, जो भारतीय राष्ट्रवाद का सच्चा परिचय है, की भावना से ओत-प्रोत करने का बीड़ा उठाया। अंग्रेजी साम्राज्यवाद से हिन्दुस्तान की मुक्ति के लिए अहिंसा का मार्ग चुना और इस हेतु जनैकता की स्थापना एवं आमजन में राष्ट्रवाद की भावना के विकास के लिए हिन्दी की भूमिका, महत्ता और योगदान को प्राथमिकता से समझा।

गाँधीजी का हिन्दी प्रेम और राष्ट्रभाषा के रूप में उनकी हिन्दी की स्वीकार्यता को किसी पुष्टि की आवश्यकता नहीं है। वे देश के प्रत्येकजन से इसे राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकारने की अपेक्षा करते थे। उनका दृढ़तापूर्वक मानना था कि हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है। उर्दू भी हिन्दी की शक्ति से ही उत्पन्न हुई है। हिन्दी में ही वह क्षमता है कि वह द्रविड़ जनता सहित पूरे देश के लोगों के दिलों में अविलम्ब घर कर सकती है।

गाँधीजी जहाँ निश्चित रूप से यह मानते थे कि हिन्दी देश के अधिकांशजन द्वारा बोली जाने वाली भाषा है, वहीं वे यह भी स्वीकार करते थे कि यह देश के लगभग सभी अहिन्दी भाषियों द्वारा भी, न्यूनाधिक समझ लिए जाने वाली भाषा है। इतना ही नहीं, देवनागरी लिपि के सम्बन्ध में उनका यह कहना था कि देश की सभी भाषाओं के लिए एक ही देवनागरी लिपि हो, जिससे देश की अनेकानेक समस्यायें सुलझेंगी, भाषायी विवाद निपटेंगे और लोगों में राष्ट्रीय एकता के लिए प्रतिबद्धता का श्रेष्ठ विकासित होगा।

गाँधीजी का स्पष्ट कहना था कि हिन्दी देशवासियों को राष्ट्रीय एकता के सूत्र में पिरोने का सबसे सुदृढ़ आधार बन सकती है। देशवासियों की वही एकबद्धता समन्वयकारी, विकासोन्मुख और विभिन्नताओं में एकता का निर्माण करने वाली भारतीय संस्कृति को निरन्तर सुदृढ़ता प्रदान करते हुए तथा हमारे विशिष्ट राष्ट्रवाद को देशवासियों के वृहद् कल्याण का माध्यम बनाते हुए वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा को चरितार्थ कर सकती है। महात्मा गाँधी का हिन्दी को लेकर इतना विशाल और मानवीयता से भरपूर दृष्टिकोण था।

भारत में जितनी भी क्षेत्रीय-प्रान्तीय भाषाएँ या स्थानीय बोलियाँ हैं, वे सभी उन्हें बोलने वालों के लिए प्राणप्रिय हैं, अतः वे उनकी मातृभाषाएँ हैं, इसीलिए 25 अगस्त, 1946 को हरिजन में यह उल्लेख करते हुए कि, 'मेरी मातृभाषा में भले ही कितनी भी त्रुटियाँ क्यों न हों, मै उससे उसी प्रकार चिपटा रहूँगा, जिस प्रकार अपनी माँ की छाती से', उन्होंने स्थानीय-क्षेत्रीय भाषाओं की समान उन्नति का भी आह्वान किया और यह हार्दिक कामना की कि हिन्दी भारतीय संस्कृति की ही भाँति सबको समाहित करने वाली सिद्ध हो। कठोरता और एकांगिता से दूर रहकर देश की सदाबहार संस्कृति स्थापित हो और विशिष्ट हिन्दुस्तानी राष्ट्रवाद का सजीव उदहारण बनकर उभरे तथा विश्वभर में भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की जय-जयकार हो। ❑

लोक-विमर्श

हक़ के लिए अदालत के दरवाजे पर खड़ी बेटियां

❑ मनीषा पांडेय

हिंदुस्तान की सबसे ऊंची अदालत ने एक महत्वपूर्ण फैसला सुनाते हुए इस देश के पिताओं से कहा है कि तुम्हारी संपत्ति में तुम्हारी बेटी का बराबर का हक़ है. हालांकि यह कोई नई बात नहीं है. हिंदू उत्तराधिकार कानून, 1956 में बदलाव तो 2005 में ही हो चुका था. जहां पुराना कानून पिता की सारी संपत्ति सिर्फ बेटों के नाम कर रहा था, वहीं 2005 के संशोधन के बाद लड़कियों को भाई के बराबर हिस्सा मिल गया था. मगर सिर्फ कानून की किताब में, असल जिंदगी में नहीं.

चूंकि कागज पर अधिकार देने से जिंदगी में अधिकार नहीं मिल पाया, इसलिए इस बीच कुछ औरतों ने कोर्ट का दरवाजा भी खटखटाया. कोर्ट की अब तक इस बारे में कोई साफ समझ नहीं थी कि अगर 2005 के पहले किसी हिंदू व्यक्ति की मृत्यु हो गई हो तो उसकी संपत्ति में बेटी के हिस्से का क्या होगा? अगर सुप्रीम कोर्ट को ये लगा कि इस कानून में और साफगोई की ज़रूरत है तो ठीक ही लगा. इसी साफगोई को अमल में लाते हुए कहा गया कि जन्म से ही पिता की संपत्ति में बेटी का बराबर का अधिकार है. अब पिता चाहे जीवित हों या न हों, लड़की कोर्ट का दरवाजा खटखटाएगी तो आधा घर, आधी जमीन पाएगी.

लेकिन असली सवाल तो ये है कि कितनी लड़कियां कोर्ट का दरवाजा खटखटाएंगी? कितनी खटखटा रही हैं? उन्हें क्यों खटखटाना चाहिए? उन्हें क्यों कहना चाहिए कि आधा खेत, आधा घर, आधी जमीन, आधा पैसा मेरा है. पिता को क्यों नहीं कहना चाहिए कि सबकुछ में आधा बेटी का भी है? बेटे और बेटी का हक बराबर है?

मैं जहां रहती हूं, उस 27 मंजिला इमारत के हर फ्लोर पर छह फ्लैट हैं. आज मैंने हर फ्लैट का दरवाजा खटखटाया और उस घर की महिला से एक ही सवाल पूछा कि क्या आपको अपने पिता की संपत्ति में हिस्सा मिला? सारी स्त्रियों का एक ही जवाब था, नहीं. हालांकि किसी ने ये नहीं कहा कि पिता ने दिया नहीं. सबने कहा कि उन्होंने मांगा ही नहीं, कि उन्हें चाहिए ही नहीं, कि उन्होंने इस बारे में सोचा ही नहीं. एक बार मैंने अपना एक फैमिली चार्ट बनाया था. अपने ननिहाल और ददिहाल की पिछली तीन पीढ़ियों का. उस चार्ट के मुताबिक हमारे खानदान में आज तक एक भी ऐसा केस नहीं हुआ है, जहां बेटी को बाप की संपत्ति में कोई भी हिस्सा मिला हो.

फिलहाल कानून चाहे जो कहे, बेटी को संपत्ति में हिस्सा देने का रिवाज हमारे यहां नहीं है. मेरे गांव के किसी घर में नहीं है. आसपास के गांव के किसी घर में भी नहीं है. 50 कोस से लेकर 5000 कोस तक किसी घर में नहीं है. मेरे गांव और आसपास के 1000 और गांवों तथा शहरों की सारी जमीनों, सारी संपत्तियों और कचहरी के सारे कागजों पर पुरुषों के नाम ही दर्ज है.

अगर आपको इस बात पर कोई शुबहा हो तो एक फैमिली चार्ट आप भी बनाइए और पता करिए कि आपके आसपास की सारी जमीनें, सारे खेत, सारी संपत्ति किसके नाम हैं. हमारे घर में जिनके कोई बेटा न हुआ और जिन पुरुषों की औरतें सिर्फ बेटियां जनने का ताना सुनते हुए दुनिया से रुखसत हुईं, उनकी संपत्ति भी उनकी बेटियों को नहीं, बल्कि जेठ-देवरों के बेटों को दी गईं. घर के एक बुजुर्ग से जब ये कहा तो जवाब मिला कि भाई रखा तो जिंदगी भर. खिलाया, ओढ़ाया, और क्या चाहिए? संपत्ति-पैसा लेकर क्या करती? ये बोलने वाले खुद तीन बेटियों का पिता हैं.

ये हैं हमारे हिंदुस्तानी पिता, जो अपनी बेटियों से प्यार तो करते हैं, लेकिन अपनी संपत्ति से ज्यादा प्यार करते हैं. आदर-सम्मान की बात तो रहने ही दें, क्योंकि उत्तर भारत में आदर का आइडिया ही बहुत नया है. हम औरतों को पूजने वाले लोग हैं, उनका आदर करने और उन्हें संपत्ति में बराबर का हिस्सा देने वाले नहीं.

अपने जीवन में मिले बेहतरीन पुरुषों के लिए मैं अपने पिता की शुक्रगुजार हूं, शायद इसका उलटा भी उतना ही सच है. औरतें अपनी जिंदगी की तमाम दुर्गति, दुख, पीड़ा, अपमान और अब्यूसिव रिश्तों के लिए भी अपने पिता की ही शुक्रगुज़ार हैं. भारतीय परिवार बेटी को संपत्ति में बराबर का हिस्सा न देकर उसे ये बता रहे होते हैं कि वह अपने भाई से कम है. उसका आदर कम है, उसका हक कम है, उसके हिस्से में सबकुछ घर के पुरुषों से कम है. जो अपने पिता की नजरों में कम हो, वह पति की नजरों में भी कम ही होती है.

पिता कहते हैं कि बेटी, तुम पराया धन हो. पति का घर ही तुम्हारा घर है. पति का मिजाज बिगड़ जाए तो कहता है, जाओ अपने बाप के घर. चूंकि कचहरी के कागजों पर हर घर किसी पुरुष के नाम ही दर्ज है, इसलिए उसे पता ही नहीं कि उसका घर है कौन सा. हालांकि प्यार का दावा तो करते हैं, लेकिन बेटी को संपत्ति में बराबर का हिस्सा न देकर पिता पहले ही उसके पैरों की ज़मीन खींच लेते हैं. ससुराल में सब सुख रहा तो ठीक, दुख रहा तो खिलाकर, ओढ़ाकर एहसान भी करते हैं. जो औरत ये एहसान न चाहे, जो अपने हिस्से का खेत खुद जोतना चाहे, अपने हिस्से का पैसा खुद खर्च करना चाहे, अपने खाने-ओढ़ने की फिक्र खुद करना चाहे, उसके लिए पिता का प्यार छूमंतर होने में भी वक्त नहीं लगता.

हे पिता! पुरुषों के आधिपत्य वाली इस दुनिया में अपने साथ हुई हर अच्छी और बुरी बात के लिए दरअसल हम आप के ही शुक्रगुजार हैं. सुप्रीम कोर्ट ने भी आपसे ही कहा है कि आपकी बेटी का हक़ बिलकुल बराबर है. अगर आप एक अच्छे पिता हैं तो कोर्ट की बात आपको समझ में आएगी और अगर नहीं हैं, तो कोर्ट की बात समझाने के लिए खुद कोर्ट के दरवाजे तो खुले ही हैं.

अब आप खुद तय करिये कि आप किस तरह के पिता हैं। **- बीबीसी**

'Sarvodaya Jagat' Hindi Fortnightly
Registered under RNI No. 35495/78, Postal Registration No. VSI-(E) 04, Valid upto 31 December 2020
Issued by S.S.P.O. Varanasi (East Division)

कविता

यह किसका खून बह गया

❑ वामिक जौनपुरी

जवाब इसका कौन दे
किसे अब इतना होश है
कि आज किसके सोग में
मुल्क स्याहपोश है।

जवाब इसका कौन दे
यह किसका खून बह गया
यह कौन जाते-जाते दिल का
राज सबसे कह गया
यह कौन कत्ल हो गया
फसाना ए हयात
कौन कहते-कहते सो गया।

जवाब इसका कौन दे
कि खुद हमारे हाथ
इस लहू में हैं रंगे हुए
वो जिन्दगी का राजदां
वो बेकसों का पासबां
वतन का मीरे कारवां
नजर से दूर हो गया
वह जाम जो छलक रहा था
हुर्रियत के मैकदे में
देर से महक रहा था
चूर-चूर हो गया
नजर से दूर हो गया।

वो बूढ़ा जिस्म हड्डियों का
एक कांपता बदन
मगर उसी में इस कदर
जवां लहू था मौज-ज़न
कि जिसकी बूंद-बूंद में
बसी थी उल्फ़ते वतन
लहू वह आज बह गया
वो बूढ़ा जिस्म मर गया
मगर वह काम कर गया
जिसे वो जीते-जी न अपने
आगे पूरा कर सका
तमाम उम्र दरसे अमनो
आशती दिया किया
तमाम उम्र जो
इसी उम्मीद पर जिया किया
कि एक दिन जरूर सारे
तफ्फरके मिटाएगा
फसादे दैरो काबा का
ये खोखला तिलिस्म टूट जायेगा।

वही बुजुर्गे खानदां
वही हमारा रहनुमा
हमीं से आज छुट गया
सोहाग मादरे वतन का
अपने हाथों लुट गया।

सपहरे हिन्द की
अंधेरी रात का वो माहताब
करीबे सुबह चादरे
शफक में मुंह समेटकर
नजर से दूर हो गया
यहीं कहीं निढाल होकर
बदलियों में खो गया।

जमे हुए हज़ारहा बरस के
सख्त यख के ढेर
पिघल के नर्म हो गए
हवा के सर्द झोंके रफ्ता-रफ्ता
गर्म हो गये
वो चांद जो नजर से छुप गया था
बन के आफताब
दिलों में इक नई शुआए
जिन्दगी में गूंधता
बुलन्द होता जा रहा है
मशरकी फिज़ाओं में
फिर इत्तेहाद के फरेरे
खुल गये हवाओं में।

गलत कि मीरे कारवां
गलत कि अपना पासबां
नजर से दूर हो गया
नजर से दूर होते ही
दिलों में खिंच के आ गया
शिकस्ता तारे-रूह-ओ
जिस्म कौम को मिला गया

जहाने नौ पे छा गया
खामोश पर्दा हाए साज़े
अमन को हिला गया
वो खून वो रकीक़शै
सरोदे जिन्दगी की लौ
वो सुर्ख गाज़ा रवां
निगारे जिन्दगी को इस कदर
हसीं बना गया
कि मौत का स्याह देव
अपनी लानतों के दमदमों में
दब के रह गया
जो रहगुज़र उदास हो रही थी
जगमगा गयी
हमारा नौजवान काफ़ला
फिर उठ खड़ा हुआ
बदेशी रखना और निज़ामे
कौनहा से लड़ा हुआ
दोबारा हो के ताज़ा दम
कदम-कदम बहम-बहम
शवाए ज़र निगार की
जिलों में जा रहा है अब।

नकीबे वक्त से कहो
कि इनक़लाब के वही
पुराने नारे फिर लगाये
जो रास्तों से हट गये हैं
उनको राह फिर दिखाये
यहां तलक वहां तलक
कि कोई बाकी रह न जाये।

दिलों में जिनके चोर हैं
वो इसको खूब जान लें
कि रात अब न आयेगी
घटा कभी न छायेगी
कि जिसकी आड़ से
कोई कुमंद फिर लगा सके
जो सो रहे थे जाग उठे
वो चांद जो नजर से
छप गया था बन के आफ़ताब
दिलों को इक नई शुआए
जिन्दगी में गूंधता
बुलन्द होता जा रहा है
मशरक़ी फ़िज़ाओं में। ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए प्रकाशक अरविन्द अंजुम द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार